वार्षिक रु. १००, मूल्य रु. १२
विवेक ज्योति
वर्ष ५४ अंक ७ जुलाई २०१६
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

जुलाई २०१६

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५४
अंक ७

वार्षिक १००/– **एक प्रति १२/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ४६०/–
१० वर्षों के लिए – रु. ९००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस. अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ३० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए १२५ यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १४०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : ८१०९१ २७४०२)

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

भगवान श्रीरामकृष्ण देव का यह सार्वजनीन मन्दिर रामकृष्ण मठ, नागपुर में स्थित है। मन्दिर का प्राण-प्रतिष्ठा समारोह २००६ में रामकृष्ण संघ के संघाध्यक्ष श्रद्धेय स्वामी गहनानन्दजी के करकमलों द्वारा हुआ था।

रामकृष्ण मठ, नागपुर की स्थापना १९२८ ई. में हुई थी। यह मठ रामकृष्ण संघ का एक प्रमुख प्रकाशन केन्द्र है। रामकृष्ण संघ की मराठी पुस्तकों का प्रकाशन यहीं से होता है। इसके अलावा हिन्दी रामकृष्ण-विवेकानन्द-वेदान्त साहित्य का भी यह एक प्रमुख प्रकाशन केन्द्र है।

आश्रम स्थित विवेकानन्द विद्यार्थी भवन में निर्धन एवं अल्प-संसाधन स्नातक-शिक्षा के विद्यार्थियों के लिए रहने एवं भोजन की व्यवस्था है। विद्यार्थी भवन में छात्रों के शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास के लिए अनेक कार्यशालाएँ आयोजित की जाती हैं।

आश्रम स्थित फिजियोथेरेपी यूनिट में अत्यन्त कम दरों में रोगियों का उपचार किया जाता है। नागपुर के आसपास के गाँवों में मोबाइल मेडिकल यान द्वारा गरीबों की चिकित्सकीय सेवा की जाती है। आश्रम द्वारा होमियोपैथी चिकित्सा केन्द्र का भी संचालन किया जाता है।

आश्रम में प्रत्येक सप्ताह युवाओं के लिए 'यूथ फोरम' कार्यक्रम का आयोजन किया जाता है, जिसमें उन्हें धार्मिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक शिक्षा दी जाती है।

लेखकों से निवेदन

सम्माननीय लेखको ! गौरवमयी भारतीय संस्कृति के संरक्षण और मानवता के सर्वांगीण विकास में राष्ट्र के सुचिन्तकों, मनीषियों और सुलेखकों का सदा अवर्णनीय योगदान रहा है। विश्वबन्धुत्व की संस्कृति की द्योतक भारतीय सभ्यता ऋषि-मुनियों के जीवन और लेखकों की महान लेखनी से संजीवित रही है। आपसे नम्र निवेदन है कि 'विवेक ज्योति' में अपने अमूल्य लेखों को भेजकर मानव-समाज को सर्वप्रकार से समुन्नत बनाने में सहयोग करें। विवेक ज्योति हेतु रचना भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें –

१. धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा मानव के नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित रचनाओं को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है। **२.** रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिकतम चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर स्पष्ट सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुयी हो। आप अपनी रचना ई-मेल – vivekjyotirkmraipur@gmail.com से भी भेज सकते हैं। **३.** लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें। **४.** आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें **५.** पत्रिका हेतु कवितायें छोटी, सारगर्भित और भावपूर्ण लिखें। **६.** 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित सं-शोधन करने का पूरा अधिकार होगा। **७.** 'विवेक-ज्योति' में मौलिक और अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है, इसलिये अनुवाद न भेजें। यदि कोई विशिष्ट रचना इसके पहले किसी दूसरी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हो, तो उसका उल्लेख अवश्य करें।

जुलाई माह के जयन्ती और त्योहार

०६ जगन्नाथ रथयात्रा
१९ गुरु पूर्णिमा
३१ स्वामी रामकृष्णानन्द

वर्ष ५४ जुलाई २०१६ अंक ७

श्रीगुर्वष्टकम्

श्रीशंकराचार्य

शरीरं सुरूपं सदा रोगमुक्तं
यशश्चारु चित्रं धनं मेरुतुल्यम्।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्।।
षडङ्गादि वेदो मुखे शास्त्रविद्या
कवित्वं च गद्यं च पद्यं करोति।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं...।।
विदेशेषु मान्यः स्वदेशेषु धन्यः
सदाचारवृत्तेषु मत्तो न चान्यः।।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं...।।
क्षमामण्डले भूपभूपालवृन्दैः
सदा सेवितं यस्य पादारविन्दम्
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं...
यशो मे गतं दिक्षु दान प्रतापा-
ज्जगद्वस्तु सर्वं करे यत्प्रसादात्।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं...।।
न भोगे न योगे न वा वाजिमेधे
न कान्तासुखे नैव वित्तेषु चित्तम्।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं...।।
अरण्ये न वा स्वस्य गेहे न कार्ये
न देहे मनो वर्तते मे त्वनर्घ्ये।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं...।।

गुरोरष्टकं यः पठेत् पुण्येदेही यतिर्भूपतिर्ब्रह्मचारी च गेही।
लभेद्वाञ्छितार्थं परब्रह्मसंज्ञं गुरोरुक्तवाक्ये मनो यस्य लग्नम्।।

पुरखों की थाती

यस्तु क्रोधे समुत्पन्ने प्रज्ञया प्रतिबुध्यते ।
तेजस्विनं तं विद्वांसो मन्यन्ते तत्त्वदर्शिनः।।५०९।।

– जो व्यक्ति मन में क्रोध उत्पन्न होने पर अपने विवेक के द्वारा सावधान हो जाता है, वह क्रोधरूपी शत्रु को पछाड़ देता है; ज्ञानी लोग उसे तेजस्वी की संज्ञा से विभूषित करते हैं ।

यदिच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा ।
परापवाद-सस्येभ्यश्चरन्तीं गां निवारय ।।५१०।।

– यदि कोई एक ही कर्म के द्वारा सारे जगत को अपने वश में करना चाहता हो, तो बस, वह दूसरों की निन्दा रूपी खेतों में अपनी जिह्वा-रूपी गाय को चराना बन्द कर दे ।

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम् ।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं प्रयोजनम्।।५११।।

– जो व्यक्ति अन्धा है, उसके लिये दर्पण की कोई उपयोगिता नहीं, वैसे ही जिस व्यक्ति का विवेक जाग्रत नहीं हुआ है, वह धर्मग्रन्थों को पढ़कर भी उनका मर्मार्थ नहीं जान सकता।

युक्तियुक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि ।
अन्यत् तृणमिव त्याज्यमप्युक्तं पद्मजन्मना ।।५१२।।

– यदि कोई बालक भी युक्तिसंगत बात कहता हो, तो उसे ग्रहण कर लेना चाहिये और यदि ब्रह्मा भी कोई अयुक्तिसंगत बात कहें, तो उसे तृण के समान त्याग देना चाहिये ।

यस्मादन्नात्प्रजाः सर्वाः कल्प कल्पेऽसृजत् प्रभुः।
तस्मादन्नात्परं दानं न भूतं न भविष्यति ।।५१३।।

– सब दानों में अन्नदान श्रेष्ठ है, हर कल्प में परमात्मा अन्न से ही सम्पूर्ण प्राणियों की सृष्टि करता है, अतः अन्नदान परम दान है । इससे श्रेष्ठ दान न हुआ है और न होगा ।

विविध भजन

गुरु बिन कौन बतावे

कबीरदास

गुरु बिन कौन बतावे बाट। बड़ा विकट यमघाट।।
भ्रान्ति पहाड़ी नदियाँ बीच मो अहंकार की लाट।
काम क्रोध दो पर्वत ठाड़े, लोभ चोर संघात।।
मद-मत्सर का मेहा बरसत, माया पवन बहे दाट।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, क्यों तरना यह घाट।।

ऐसी करी गुरुदेव दया

स्वामी ब्रह्मानन्द

ऐसी करी गुरुदेव दया,
मेरा मोह का बन्धन तोड़ दिया।।
दौड़ रहा दिन-रात सदा,
जग के सब कार बिहारण में।
सपने सम विश्व दिखाय मुझे,
मेरे चंचल चित्त को मोड़ दिया।। ऐसी करी ...
कोई शेष गणेश महेश रटे,
कोई पूजत पीर पैगम्बर को।
सब पन्थ गिरंथ छुड़ा करके,
इक ईश्वर में मन जोड़ दिया।। ऐसी करी ...
कोई ढूँढ़त है मथुरा नगरी,
कोई जाय बनारस बास करे।
जब व्यापक रूप पिछान लिया,
सब भरम का भंडा फोड़ दिया।। ऐसी करी ...
कौन करूँ गुरुदेव की भेंट,
न वस्तु दिखे तिहूँ लोकन में।
'ब्रह्मानन्द' समान न होय कभी,
धन माणिक लाख करोड़ दिया।। ऐसी करी...

भगवान तेरे पद-पंकज में

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

भगवान तेरे पद-पंकज में मेरा जीवन बलिदान रहे।
तेरे नाम-जपन् तेरी सेवा में मेरा तन-मन-धन सम्मान रहे।।
चाहे दशरथनन्दन राम रहें, चाहें यशोदानन्दन श्याम रहें।
चाहे चन्द्रमणि के प्यारे सुत श्रीरामकृष्ण भगवान रहें।।
चाहे रूप धनुर्धर राम का हो, चाहे मुरलीधर घनश्याम का हो।
चाहे समाधिस्थ श्रीरामकृष्ण की प्रेममूर्ति ललाम रहे।।
हृदि तव पद-पद्म पराग झरै, भक्तिप्रेम बिराग की ज्योति बरै।।
विषयों की कभी न आग जरै, मम जीवन पूरणकाम रहे।।
तुमने भक्तों का उद्धार किया, इस भवसिन्धु से पार किया।
हे नाथ दीनतनय पर भी, तेरा वही अभय वरदान रहे।।
कर पाणिस्पर्श निज धाम दिया, जन्मों के पातक मिटा दिया।
तेरे वही कृपा-कर-कमल प्रभु, मेरे सिर पर अविराम रहें।।
जब तक मेरे तन में प्राण रहे, मुख में तव पावन नाम रहे।
हर श्वास-श्वास और रोम-रोम, तेरा नाम और गुणगान करे।।

दशा मुझ दीन की

बिन्दुजी

दशा मुझ दीन की भगवन सम्हालोगे तो क्या होगा।
अगर चरणों की सेवा में लगा लोगे तो क्या होगा।।
नामी पातकी हूँ मैं और नामी पापहर तुम हो।
जो लज्जा दोनों नामों की बचा लोगे तो क्या होगा।।
जिन्होंने तुमको करुणाकर पतित पावन बनाया है।
उन्हीं पतितों को तुम पावन बना लोगे तो क्या होगा।।
यहाँ सब मुझसे कहते हैं, तू मेरा है तू मेरा है।
मैं किसका हूँ ये झगड़ा तुम चुका दोगे तो क्या होगा।।
अजामिल, गीध, गनिका जिस दया गंगा में तरते हैं।
उसी में 'बिन्दु' सा पापी मिला लोगे तो क्या होगा।।

लोकमंगलकारी भगवान जगन्नाथ की रथयात्रा

लोकहितैषिणी भारतीय संस्कृति और भारतीय संस्कृत वाङ्मय में भगवान जगन्नाथ की महिमा का वर्णन मिलता है। ब्रह्मपुराण में भगवान जगन्नाथ को प्रसन्न करने के लिये प्रणाम-मन्त्र में ऋषि कहते हैं –

सर्वव्यापी जगन्नाथः शङ्खचक्रगदाधरः।
अनादिनिधनो देवः प्रीयतां पुरुषोत्तमः।।

– हे शंख-चक्र-गदाधारी सर्वव्यापी भगवान जगन्नाथ जी एवं आदि-अन्तरहित भगवान पुरुषोत्तम मुझ पर प्रसन्न हों। श्रीचैतन्यदेव भगवान जगन्नाथजी से लोककल्याण की प्रार्थना करते हुए कहते हैं –

हर त्वं संसारं द्रुततरमसारं सुरपते
हर त्वं पापानां विततिमपरां यादवपते।
अहो दीनानाथं निहितमचलं पातुमनिशं
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।।

– हे प्रभु ! आप संसार के समस्त पाप-ताप-दुख का हरण कीजिए और हमारी अहर्निश रक्षा कीजिए। हे जगन्नाथ प्रभु ! हम अपने नेत्रों से आपका सदा दर्शन करते रहें।

ऐसे सर्वव्यापी जगन्नाथ भगवान की सार्वजनिक लोकमंगलकारिणी रथयात्रा बड़े धूमधाम से पुरी में मनाई जाती है, जिसमें सम्पूर्ण विश्व से लोग आकर जाति-भेदातीत होकर उस यात्रा में सम्मिलित होते हैं। यह अद्वितीय महोत्सव है। इसे गुण्डिचा यात्रा भी कहते हैं। इसमें वर्गभेदरहित श्रद्धा और प्रेम से भगवान जगन्नाथ के भोग को 'महाप्रसाद' के रूप में ग्रहण करते हैं।

जीवों की मुक्तिदायिनी जगन्नाथा-यात्रा के सम्बन्ध में ब्रह्माजी कहते हैं – "हे मुनियो ! भगवान श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्रा, ये रथ पर विराजमान होकर जब गुण्डिचा मण्डप की यात्रा करते हैं, उस समय जिन्हें उनका दर्शन प्राप्त होता है तथा जो लोग एक सप्ताह तक उक्त मण्डप में विराजमान श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्रा की झाँकी दर्शन करते हैं, वे विष्णुलोक में जाते हैं।

रथयात्रा का आरम्भ

ऐसी महिमान्वित रथयात्रा के प्रारम्भ की एक विलक्षण गाथा है। उड़ीसा के राजा इन्द्रद्युम्न ने एक बार समुद्र में एक बड़ा काठ देखा। उन्होंने उससे भगवान विष्णु की मूर्ति बनवाने की सोची। विश्वकर्माजी ने वृद्धरूप में आकर राजा से कहा – मूर्ति पूर्ण होने तक उसे कोई नहीं देखेगा। राजा ने शर्त मान ली और वे एक भवन में दरवाजा बन्द कर मूर्ति बनाने लगे। अन्य किसी को उस बढ़ई के बारे में कुछ पता न था। कई दिनों से बन्द घर में बिना भोजन-पानी के, वृद्ध कैसे मूर्ति बनाएगा, ऐसा महारानी को संशय हुआ। उन्होंने राजा को कहा। जब राजा ने घर का कपाट खोलकर देखा, तो वृद्ध बढ़ई अदृश्य हो गया और उसके द्वारा श्रीजगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा की अपूर्ण मूर्तियाँ बनी थीं। स्वभावतः राजा दुखित हुए। तभी आकाशवाणी हुई – "हे राजन् ! दुखी मत हो, हम ऐसे ही रहना चाहते हैं। हमारी स्थापना करा दो।" भगवान जगन्नाथजी के मन्दिर में वे मूर्तियाँ आज भी स्थापित हैं। पुरी की रथयात्रा में भी सुशोभित होती हैं। कहा जाता है कि सुभद्रा को द्वारिका-भ्रमण करने की इच्छा हुई। उनकी इच्छापूर्ति हेतु श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्रा को पृथक-पृथक सुसज्जित रथों में नगर-भ्रमण कराया गया। इसी स्मृति में यह रथयात्रा-महोत्सव पुरी में प्रत्येक वर्ष आयोजित होता है।

रथ को तीर्थयात्री बड़ी श्रद्धा से खींचते हैं। साथ में लोग वाद्ययन्त्रों के साथ विभिन्न गीत गाते हैं। श्रीजगन्नाथजी का जयघोष करते हैं।

विभिन्न तीर्थों में उन तीर्थों से सम्बन्धित यात्रा-परिक्रमाएँ होती हैं। जैसे, काशी पंचकोशी यात्रा, गोवर्धन परिक्रमा, कामद गिरि परिक्रमा आदि। किन्तु पुरी में भगवान जगन्नाथ की रथयात्रा विशेष है। इस यात्रा में साक्षात् भगवान अर्चाविग्रहरूप में रथ के सिंहासन पर विराजमान रहते हैं। जिन यात्रियों के साथ भगवान स्वयं साथ हों, उनका सब प्रकार से मंगल, सुख और आनन्दानुभूति स्वाभाविक है। अनादिकाल से आ रही मानव की इसी श्रद्धा और विश्वास ने भगवान को सम्पूर्ण मानवता पर अपनी कृपाछत्र-छाया से आवृत्त करने को विवश किया। भगवान के रथ की रस्सी को खींचकर भक्त अपने जीवन की बागडोर को जगत के नाथ भगवान के हाथों में सौंपकर मुक्ति को करतलगत कर लेते हैं। भगवान जगन्नाथ की रथयात्रा ऐसी मुक्तिदायिनी है ।

श्रीरामचरितमानस में रथ का वर्णन

गोस्वामी तुलसीदास रचित श्रीरामचरितमानस में भी एक रथ का वर्णन मिलता है। रावण को रथस्थ और श्रीरामचन्द्र जी को रथविहीन देखकर विभीषण घबरा गये। भगवान के प्रति अत्यधिक प्रेम होने के कारण उनके मन में यह संशय हुआ कि बिना रथ के श्रीरामजी रावण पर कैसे विजय प्राप्त

करेंगे? उन्होंने भगवान की चरण-वन्दना कर सप्रेम कहा –

नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना।
केहि बिधि जितब बीर बलवाना।।

– हे नाथ ! आपके पास न रथ है, न तनरक्षक कवच है, न जूते हैं। आप वीर बलवान रावण पर कैसे विजय प्राप्त करेंगे? तब भगवान कहते हैं –

सुनहु सखा कह कृपानिधाना।जेहिं जय होइ सो स्यन्दन आना।।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।।
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे।।
ईस भजनु सारथि सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना।।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा।।
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना।।
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा।।
सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें।।

महा अजय संसार रिपु जीति सकई सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर।।
(६/७९/३-११, दोहा-८० (क))

– हे मित्र ! शौर्य और धैर्य उस रथ के पहिये हैं। सत्य और शील उसकी दृढ़ ध्वजा-पताका है। बल, विवेक, दम और परोपकार ये चार घोड़े हैं, जो क्षमा, दया और समता रूपी डोर से रथ में जोड़े हुये हैं। ईश्वर का भजन चतुर सारथि है, वैराग्य ढाल है, सन्तोष तलवार है, दान फरसा है, बुद्धि प्रचंड शक्ति है, श्रेष्ठ विज्ञान कठिन धनुष है। निर्मल अचल मन तरकस है और शम, यम और नियम ये विभिन्न बाण हैं, ब्राह्मण और गुरु की पूजा अभेद्य कवच है, इसके समान विजय का अन्य कोई उपाय नही है। हे धैर्यशाली मित्र सुनिये ! जिसके पास ऐसा दृढ़ रथ हो, वह वीर संसार रूपी महान दुर्जय शत्रु पर विजय प्राप्त कर सकता है।

यजुर्वेद में रथ-वर्णन

यजुर्वेद (३४/६) में रथ का विवरण इस रूप में मिलता है –

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

जैसे निपुण सारथि वेगवान घोड़ों को लगाम से स्वेच्छानुसार चलाता है, वैसे ही हृदयस्थ अवस्थादि रहित तीव्र वेगशाली मेरे मन में मंगलमय संकल्प उदित हो।

विदुरनीति दर्पण में रथ का दृष्टान्त

रथः शरीरं पुरुषस्य राजन्नात्मा नियन्तेन्द्रियाण्यस्य चाश्वाः।
तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वैर्दान्तैः सुखं याति रथीव धीरः।।५७।।

– हे राजन् ! यह शरीर पुरुष का रथ, आत्मा नियन्त्रक सारथि, इन्द्रियाँ घोड़े हैं, जिन्हें वश में कर कुशल व्यक्ति सुखपूर्वक यात्रा करता है।

कठोपनिषद में रथ आदि रूपक का वर्णन

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।। १/३/३,४

– तुम आत्मा को रथी, शरीर को रथ, बुद्धि को सारथि और मन को लगाम समझो। विवेकी मनीषी इन्द्रियों को घोड़े कहते हैं और विषयों को उनके मार्ग बतलाते हैं तथा शरीर, इन्द्रिय एवं मन से युक्त आत्मा को भोक्ता कहते हैं।

भगवान जगन्नाथ की रथयात्रा में सम्मिलित होनेवाले भक्तों में भगवान के प्रति श्रद्धा-भक्ति की उद्दीपना होती है। प्रेम का उद्रेक होता है। सद्य: मानसिक वासनाएँ शान्त हो जाती हैं, षड्‌रिपुओं पर विजय मिलती है और मन भगवद्भाव में विभोर हो जाता है। एक भक्त लिखते हैं – ''रथ का निर्माण बुद्धि, चित्त और अहंकार से होता है। ऐसे रथ रूपी शरीर में आत्मारूपी भगवान जगन्नाथ विराजमान होते हैं। इस प्रकार रथयात्रा आत्मा और शरीर के मेल का संकेत करती है और आत्मदृष्टि बनाए रखने की प्रेरणा देती है। रथयात्रा के समय रथ का संचालन आत्मायुक्त शरीर करता है, जो जीवनयात्रा का प्रतीक है। यद्यपि शरीर में आत्मा होती है, तो भी वह स्वयं संचालित नहीं होती, बल्कि उसे माया संचालित करती है। इसी प्रकार भगवान जगन्नाथ के स्वयं विराजमान होने पर रथ स्वयं नहीं चलता, उसे खींचने के लिये लोकशक्ति की आवश्यकता होती है।'' श्रीरामकृष्ण की लीलासहचारिणी श्रीमाँ सारदा ने कहा था, '''रथे वामनं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते।''' अर्थात् रथ में भगवान का दर्शन करने से पुनर्जन्म नहीं होता।

भगवान जगन्नाथ हमारे सारथि हैं, किन्तु हमें अपने साधना-पुरुषार्थ से जीवन-रथ को स्वयं खींचना होगा। भगवान हमारे इन्द्रियाश्वों को नियन्त्रित कर लोकयात्रा कराकर पुनः अपने धाम में लेकर चले आएँगे। लोकमंगलकारी, मुक्तिप्रदायिनी भगवान जगन्नाथ की रथयात्रा का यह संदेश है। ○○○

धर्म ही जीवन है

विवेक वाणी

स्वामी विवेकानन्द
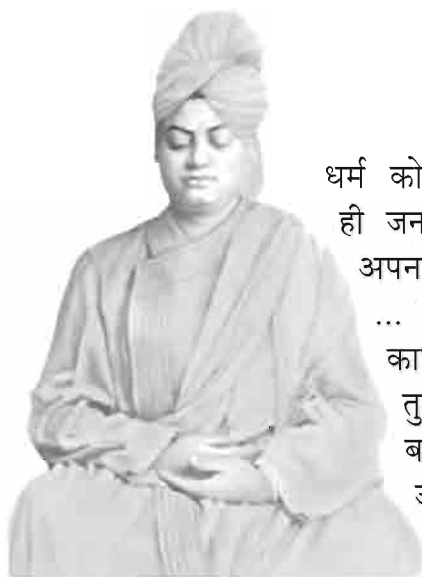
धर्म को क्षति पहुँचाये बिना ही जनता की उन्नति – इसे अपना आदर्श बना लो । ... क्या समता, स्वतंत्रता, कार्य-कौशल, पौरुष में तुम पाश्चात्यों के भी गुरु बन सकते हो? क्या तुम उसी के साथ-ही-साथ स्वाभाविक आध्यात्मिक अन्त:प्रेरणा तथा साधनाओं में एक कट्टर सनातनी हिन्दू हो सकते हो? यह काम करना है और हम इसे करेंगे ही ।[१]

मेरा यही दावा है कि हिन्दू समाज की उन्नति के लिये हिन्दू धर्म का विनाश करने की कोई जरूरत नहीं है । ऐसी बात नहीं कि समाज की वर्तमान दशा हिन्दू धर्म की प्राचीन रीति-नीतियों और आचार-अनुष्ठानों के समर्थन के कारण हुई, वरन् ऐसा इसलिये हुआ कि धार्मिक तत्त्वों का सभी सामाजिक विषयों में भलीभाँति उपयोग नहीं हुआ है ।[२]

धर्म ही भारत की जीवनी-शक्ति है; और जब तक हिन्दू जाति अपने पूर्वजों से प्राप्त उत्तराधिकार को नहीं भूलेगी, तब तक संसार की कोई भी शक्ति उसका नाश नहीं कर सकती ।[३]

यदि जीवन का रक्त सशक्त तथा शुद्ध है, तो शरीर में रोग के जीवाणु नहीं रह सकते । हमारी आध्यात्मिकता ही हमारा जीवन-रक्त है । यदि यह साफ बहता रहे, यदि यह शुद्ध तथा सशक्त बना रहे, तो सब कुछ ठीक है । राजनीतिक, सामाजिक या चाहे जैसी भी जागतिक त्रुटियाँ हों, चाहे देश की निर्धनता ही क्यों न हो; यदि खून शुद्ध है, तो सब कुछ ठीक हो जायेगा ।[४]

यदि तुम धर्म को फेंककर राजनीति, समाज-नीति अथवा अन्य किसी दूसरी नीति को अपनी जीवन-शक्ति का केन्द्र बनाने में सफल हो जाओ तो उसका फल यह होगा कि तुम्हारा अस्तित्व तक न रह जायेगा । यदि तुम इससे बचना चाहो, तो तुम्हें अपने सारे कार्य अपनी जीवन-शक्ति रूपी धर्म के भीतर से ही करने होंगे । ... इस संसार में जैसे हर व्यक्ति को अपना-अपना मार्ग चुन लेना पड़ता है, वैसे ही हर राष्ट्र को भी चुन लेना पड़ता है । हमने युगों पूर्व अपना पथ निर्धारित कर लिया था, और अब हमें उसी से लगे रहना चाहिये – उसी के अनुसार चलना चाहिये । फिर, हमारा यह चयन भी तो उतना कोई बुरा नहीं । जड़ के बदले चैतन्य का, मनुष्य के बदले ईश्वर का चिन्तन करना, क्या संसार में इतनी बुरी चीज है? परलोक में दृढ़ आस्था, इस लोक के प्रति विरक्ति, प्रबल त्याग-शक्ति एवं ईश्वर और अविनाशी आत्मा में दृढ़ विश्वास तुम लोगों में सतत विद्यमान है । क्या तुम इसे छोड़ सकते हो? नहीं, तुम इसे कभी नहीं छोड़ सकते । तुम कुछ दिन भौतिकवादी होकर और भौतिकवाद की चर्चा करके भले ही मुझमें विश्वास जमाने की चेष्टा करो, पर मैं जानता हूँ कि तुम क्या हो । तुम्हें बस धर्म को थोड़ा ठीक से समझा देने भर की देर है, तुम परम आस्तिक हो जाओगे । सोचो, अपना स्वभाव तुम भला कैसे बदल सकते हो?

अत: भारत में किसी प्रकार का सुधार या उन्नति की चेष्टा करने के पहले धर्म-प्रचार आवश्यक है । भारत को समाजवादी या राजनीतिक विचारों से प्लावित करने के पहले जरूरी है कि उसमें आध्यात्मिक विचारों की बाढ़ ला दी जाय ।[५]

भला हो या बुरा, भारत में हजारों वर्षों से धार्मिक आदर्श की धारा प्रवाहित हो रही है । भला हो या बुरा, भारत का वायु-मण्डल इसी धार्मिक आदर्श से अगणित शताब्दियों तक पूर्ण रहकर जगमगाता रहा है । भला हो या बुरा, हम इसी धार्मिक आदर्श के भीतर पैदा हुये और पले हैं – यहाँ तक कि अब धर्मभाव हमारे जन्म से ही रक्त में मिल गया है; हमारे रोम-रोम में वही धार्मिक आदर्श रम रहा है, वह हमारे शरीर का अंश और हमारी जीवनी-शक्ति बन गया है । इस वेगवती नदी ने हजारों वर्ष में अपने लिये जो तल बनाया है उसे भरे बिना, इस शक्ति की प्रतिक्रिया जगाये बिना, क्या तुम धर्म का परित्याग कर सकते हो? क्या तुम चाहते हो कि गंगा की धारा फिर बर्फ से ढके हुये हिमालय को लौट जाय और फिर वहाँ से नवीन धारा बन कर प्रवाहित हो? यदि ऐसा होना सम्भव भी हो, तो भी यह कदापि सम्भव नहीं हो सकता कि यह देश अपने धर्ममय जीवन के विशिष्ट मार्ग को छोड़ सके और अपने लिये राजनीति या किसी अन्य नये मार्ग पर चलना प्रारम्भ कर दे । तुम उसी रास्ते से काम कर सकते हो, जिस पर बाधायें कम हों । और भारत के लिये धर्म का मार्ग ही अल्पतम बाधावाला मार्ग है । धर्म के पथ का अनुसरण करना हमारे जीवन का मार्ग है, हमारी उन्नति का मार्ग है और हमारे कल्याण का भी यही मार्ग है ।[६] ○○

१. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड २, पृ. ३२१; **२**. वही, खण्ड ३, पृ. ३१७; **३**. वही, खण्ड ९, पृ. ३५३; **४** वही, खण्ड ५, पृ. १८१-८२ **५**. वही, खण्ड ५, पृ. ११५-१६; **६**. वही, खण्ड ५, पृ. ७५-७६;
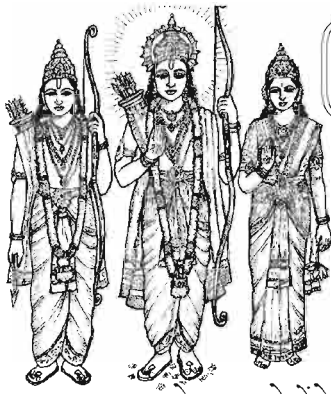
धर्म-जीवन का रहस्य (९/४)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(१९९१ ई. में विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के तत्त्वावधान में पण्डितजी के 'धर्म' विषयक प्रवचन को 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ टेप से लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी और सम्पादन 'विवेक-ज्योति' के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

इस तरह से आप देखेंगे कि कामना से पुत्र की प्राप्ति हुई, परन्तु वह क्रमश: धर्म के पक्ष की ओर मुड़ता जा रहा है । धर्म का पक्ष यही है कि क्रिया के रूप में यज्ञ तो रावण भी करता है और मेघनाथ भी करता है । परन्तु जब वह यज्ञ करता है, तो विभीषण को चिन्ता हो जाती है – महाराज, मेघनाथ यज्ञ कर रहा है, रावण यज्ञ कर रहा है । लोग समझते हैं यज्ञ क्रिया है । भगवान ने परीक्षा लेने के लिए हँसकर कहा – चलो, वह तो यज्ञ का विरोधी था, आज यज्ञ करने लगा है, तो अच्छा ही है । विभीषण जी ने कहा – महाराज, यह सुन तो लीजिए कि वह यज्ञ किसलिए कर रहा है । यह यज्ञ पूरा हो जाने पर वह अभागा मरेगा नहीं –

नाथ करइ रावन एक जागा ।
सिद्ध भएँ नहिं मरिहि अभागा ।। ६/८४/२

प्रभु ने हँसकर कहा – अभागा कैसे हुआ? न मरना भाग्य का लक्षण है या मरना भाग्य का लक्षण है? बोले – महाराज, रावण भाग्यशाली होगा, तो आपके हाथों मर जायेगा । कभी-न-कभी तो उसे मरना ही पड़ेगा । वह मर जायेगा, तो संसार के लोग बेचारे चैन की साँस लेंगे । इसलिए ऐसा व्यक्ति मर ही जाय, तो अच्छा । भगवान को स्वयं आज्ञा देनी पड़ी कि उसके यज्ञ को नष्ट कर दो । इसका अर्थ यह हुआ कि जो क्रिया धार्मिक क्रिया प्रतीत होती है, पर जिसका उद्देश्य लोक को विनष्ट करना है, दूसरों को उत्पीड़ित करना है, भगवान कहते हैं वह यज्ञ तो ध्वंस कर देने योग्य है, नष्ट कर देने योग्य हैं । धर्म की क्रिया ही धर्म नहीं है, अपितु मूल बात यह है कि परिणाम में हम क्या चाहते हैं ।

यज्ञ हुआ और फिर पुत्र मिले । कामना पूरी होने के बाद अब विश्वामित्र आ गये । वे माँगने भी आए, तो पुत्रों को । उन्होंने भूमिका बड़ी अच्छी बाँधी । बोले – राजन्, मैं जो माँग रहा हूँ, तुम उसे दे दो, परन्तु मोह और अज्ञान छोड़कर दो –

देहु भूप मन हरषित
तजहु मोह अग्यान ।। १/२०७

अभिप्राय यह था कि यदि तुम अज्ञानी बन जाओगे, मोहग्रस्त बन जाओगे, तो शायद मेरी माँग को सुनकर तुम घबरा जाओगे । लेकिन जान रखो, मैं लेने आया हूँ, तो लेकर ही जाऊँगा । देना तो पड़ेगा ही, चाहे प्रसन्नता से दो या किसी भी तरह से दो । सबको देना पड़ता है । कौन-सा ऐसा व्यक्ति है, जिसे नहीं देना पड़ता? जिन वस्तुओं पर हम सारे जीवन अधिकार जमाये रहते हैं, उन्हें क्या देना नहीं पड़ता? मृत्यु होते ही तो सब लुप्त हो जाता है, कुछ भी साथ में नहीं जाता । पुत्र की तो पहली चिन्ता यही होती है कि सम्पत्ति पर से कब पिताजी का नाम कटे और हमारा नाम चढ़े । बेचारे का सब छिन ही जायेगा । चाहे आप खुशी-खुशी दे दीजिए, या पकड़े रहने की चेष्टा कीजिए, छिनना तो अवश्यम्भावी है । चुनौती थी – तुम दान दो और सच्चा दान तब होगा, जब तुम मोह-अज्ञान से मुक्त होकर दोगे । राजन्, यही धर्म है । इस धर्म से तुमको यश मिलेगा ।

बड़ा मनोवैज्ञानिक तर्क है । मनुष्य धन भी चाहता है, पुत्र भी चाहता है और कीर्ति भी चाहता है । यहाँ सन्त ने लोभ भी दिखाया, तो क्या दिखाया? बोले – धन तो तुम्हारे यहाँ बहुत है और पुत्र भी हैं । अब इसका फल तो यह होना चाहिए कि कीर्ति हो । मैं विश्वास दिलाता हूँ कि यदि तुम दे दोगे, तो संसार में तुम्हारी कीर्ति होगी –

धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कौं
इन कहँ अति कल्यान ।। १/२०७

धीरे-धीरे इच्छाओं को उपर उठाया । राजा बोले – बस महाराज, अब कहिए आप क्या आज्ञा करते हैं? परन्तु विश्वामित्रजी ने जब अपनी माँग रखी, तो सुनते ही राजा का हृदय काँप उठा और उनके मुख की चमक फीकी पड़ गई । बोले – ब्राह्मण देवता आपने विचार करके बात नहीं कही –

सुनि राजा अति अप्रिय बानी ।
हृदय कंप मुख दुति कुमुलानी ।।
चौथेंपन पायउँ सुत चारी ।
बिप्र बचन नहिं कहेहु बिचारी ।। १/२०८/१-२

जब हमारे मन में आसक्ति और ममता होती है, तो हमें सन्त में भी अविचार दिखाई देता है । बोले – महाराज, आप

तो ब्राह्मण हैं; यह क्या विचारशून्य होकर आपने माँगा? कहाँ मेरे सुकुमार पुत्र और कहाँ वे राक्षस? आप सेना ले जाइये, सेनापति ले जाइये, मुझे ले जाइये, इन्हीं को क्यों?

परन्तु सन्त ने मुस्कराकर सोचा – तुम मुझे सेना, सेनापति और स्वयं को देने की बात करते हो? यह पाना होता, तो मैं राजा भी था, मेरी सेना भी थी, मैं सेनापति भी था, जिन वस्तुओं को मैंने छोड़ दिया, तुमसे दुबारा वही माँगूँगा? अरे भाई, उनको छोड़ा है, तो किसी और को पाने के लिए छोड़ा है और जिसको पाने के लिए सब छोड़ा है, वही वस्तु मैं तुमसे लूँगा और सब कुछ छोड़ने का यही फल है। दशरथजी समझ नहीं पा रहे थे। उनकी ममता थी। बोले – जरा राम की सुन्दरता को तो देखिए, सुकुमारता को तो देखिए ! तब वशिष्ठजी सामने आए। वशिष्ठ और विश्वामित्र का बड़ा पुराना विरोध था। परन्तु वशिष्ठजी ने कहा – नहीं राजन्, पुत्र तो देना ही होगा –

तब बशिष्ठ बहु बिधि समुझावा।
नृप सन्देह नास कहँ पावा ।। १/२०८/८

उन्होंने राजा को यह भी स्मरण दिला दिया कि जब यज्ञ के द्वारा तुम्हें चार पुत्र मिले, तो एक महात्मा दो ही पुत्र तो माँगने आया है, चार पाया और दो देने में भी तुम्हें आपत्ति है? यह कैसा अविवेक है? आधा तो दे ही दो। आश्वासन भी दे दिया – घबराओ नहीं, दो को देकर घाटे में नहीं रहोगे। बाद में तुम्हें पता चलेगा कि तुम कितने लाभ में रहे। फिर जब जनकपुर से चारों राजकुमार राजकुमारियों को लेकर लौटे, तो दशरथजी को बड़ा आनन्द आया कि गुरुजी की बात मानकर तो बड़े लाभ में रहा। दो को दिया और आठ को लेकर लौटा, यह तो 'एक लगावे चार पावे' वाली कहावत चरितार्थ हो गई। सन्त को दिया गया, महर्षि विश्वामित्र को लोक कल्याण के लिए दिया गया, यही तो देने की सार्थकता है।

आजकल तो लोग बड़े-से-बड़े व्यक्ति के भी दोष खोज लेते हैं। एक सज्जन मुझसे कहने लगे – देखिए तो, वशिष्ठजी कितने चालाक थे, बताइए ! विश्वामित्र से झगड़ा ही इसीलिए हुआ था कि उन्होंने वशिष्ठजी की गाय माँगी और उन्होंने नहीं दी। अपनी गाय तो दी नहीं, पर दूसरे का बेटा दिलवा दिया। मैंने कहा – अरे भाई, इस तरह से आप अर्थ लेंगे, तब तो इससे बुरी प्रेरणा ही मिलेगी। इसके पीछे तो एक अलग ही तात्पर्य था।

यदि कोई वशिष्ठजी से पूछता कि आपने कामधेनु की कन्या नन्दिनी को क्यों नहीं दिया और राम को क्यों दिलवा दिया? तो सन्त यही कहते – मैं जानता था कि कामधेनु-कन्या का दुरुपयोग होगा। वह तो पशु है, जो कोई उससे जैसी भी कामना करेगा, वह उसे पूरी कर देगी। इसलिए धेनु को तो सोच-समझकर ही दिया जाना चाहिए, परन्तु ईश्वर ऐसा है, जिसका दुरुपयोग हो ही नहीं सकता। अत: यदि कोई ईश्वर को माँगने आया है, तो इससे बढ़िया लेन-देन तो कोई क्या हो सकता है? – देनेवाला ईश्वर को दे, लेनेवाला ईश्वर को पाये और इस लेन-देन के बाद भी गणित ज्यों-का-त्यों रहे। आप जब देते हैं, तो आपका कुछ कम हो जाता है। पर यहाँ तो पूर्ण में से पूर्ण को दे देने से भी पूर्ण ही बचा रहता है –

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णम् उदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णम् आदाय पूर्णम् एव अवशिष्यते ।।

इसी क्रम से विकास हुआ। कामना के द्वारा, यज्ञ के द्वारा आपको जो कुछ मिला है, उसे लोक-कल्याण में लगाइये, उसका सदुपयोग कीजिए।

तब इस यज्ञ-भावना का विकास होता है महाराज जनक के धनुष-यज्ञ में। यह एक महान् निष्काम यज्ञ है, विश्वामित्रजी ने जो यज्ञ किया है, उसमें भी उनका कोई स्वार्थ नहीं है, बल्कि राक्षसी वृत्ति के लोगों का तो विनाश ही लक्ष्य है। महाराज जनक का यह यज्ञ श्रेष्ठतम यज्ञ है, जिसमें समर्पण का भाव है, सीता का समर्पण करना है।

यहाँ एक आध्यात्मिक सूत्र है। जनकपुर की स्त्रियाँ तो इतनी प्रभावित हुईं, इतनी भावुक हो गयीं कि बोलीं – यह क्या? जनकजी ने धनुष तोड़ने की शर्त क्यों रखी? अरे, राम जैसा वर कहाँ मिलेगा? उन्हें तो ऐसे ही सीता का विवाह राम से कर देना चाहिए। परन्तु जनकजी का आग्रह था कि नहीं, ऐसा नहीं होगा ! वे श्रीराम को पहचानते थे कि ये साक्षात् ईश्वर हैं, परन्तु उन्होंने सीताजी को तभी दिया, जब उन्होंने धनुष को तोड़ दिया। इसका आध्यात्मिक अर्थ क्या है? धनुष मूर्तिमान अहंकार है और पुत्री का अर्थ है ममता। धनुष मानो 'मैं' है और पुत्री मानो 'मेरी'। मैं और मेरापन, अहंता और ममता – यही बन्धन का हेतु है।

महाराज जनक कहते हैं कि समर्पण तो मैं अवश्य करूँगा, परन्तु धनुष टूटने के बाद ही। – क्यों? बोले – यदि अहंता नष्ट हुए बिना समर्पण होगा, तो यह अभिमान हो जायेगा कि मैंने समर्पण किया। इसलिए पहले समर्पण का अभिमान नष्ट हो, उसके बाद समर्पण हो।

यह आध्यात्मिक साधना का क्रम है। मैंने यह दे दिया, 'मैं' देने वाला हूँ, तब तो वह 'मैं' बच ही गया। दे तो दिया, पर 'मैं' रह गया। पर जब 'मैं' ही टूट गया, तो उसके बाद

ममता स्वयं ही समर्पित हो गई ।

तो वह जो राम-राम का संवाद है, बड़ा ही तात्त्विक है । इसमें मानो एक बड़ी कठिन कसौटी बताई गई है । परशुरामजी महान त्यागी-विरागी हैं । उनका संसार में कुछ नहीं, कोई राग नहीं, आसक्ति नहीं, पर लक्ष्मणजी ने व्यंग्य में याद दिला दिया – आप ब्रह्मचारी हैं, आप ब्राह्मण हैं, आप त्यागी हैं, परन्तु आप यह मत भूलिए कि आपके मन में जब तक इन उपाधियों के साथ लगाव है, तब तक इनके द्वारा आपमें एक सात्त्विक अभिमान का जन्म होगा । लक्ष्मणजी ने उन्हें धीरे से याद दिला दिया – इस धनुष के प्रति आपकी विशेष ममता क्यों है –

एहि धनु पर ममता केहि हेतू ।। १/२७१/८

यही जीवन का सत्य है । किसी ने कोई बड़ी वस्तु छोड़ दी है, इसका अर्थ यह नहीं कि वह ममताशून्य हो गया है । कहीं से ममता हट गई, यह तो एक बात है, परन्तु वह ममता कहीं और न जुड़ जाय ।

जड़भरत के प्रसंग में हम देखते हैं । महाराज भरत जब वन में रहते थे, तो उनकी एक मृग से ही ममता हो गयी । कब किस वस्तु या प्राणी से किसकी ममता जुड़ जायेगी, यह कहना बड़ा कठिन है । भगवान परशुराम भी अपने चरित्र के द्वारा हमें यही शिक्षा देते हैं कि बड़ा-से-बड़ा त्यागी, बड़ा-से-बड़ा वैरागी दिखाई देने वाला व्यक्ति भी यदि ध्यान नहीं देगा, तो उसकी 'ममता' इतनी बड़ी वस्तुओं से हटकर भी नश्वर धनुष से जुड़ी रह सकती है ।

रामायण में लिखा है कि समग्र ममता का विनाश तो वैराग्य के बाद होता है । यह बड़ी अद्‌भुत बात है । इसका सामान्य अर्थ यह है कि ममता जब छूटेगी, तब वैराग्य होगा, परन्तु आप ज्ञानदीपक के प्रसंग में देखिए । गोस्वामीजी बोले – सबसे पहले तो प्रभु की कृपा से सात्त्विक श्रद्धा की गाय मिले । फिर उसे सत्कर्म का – जप, तप, व्रत, यम, नियम आदि का चारा खिलाइए –

सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई ।
जौं हरि कृपा हृदयँ बस आई ।।
जप तप ब्रत जम नियम अपारा ।
जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा ।।

श्रद्धा की गाय जब सत्कर्म का हरा-हरा चारा खाने लगे, तब भाव का बछड़ा लाइए । उससे जब गाय पेन्हा जाय, तब निवृत्ति की रस्सी से गाय का पैर बाँधना है, यानी प्रवृत्ति से हटकर निवृत्ति की दिशा में चलें । विश्वास का बर्तन हो और निर्मल मन का अहीर उस श्रद्धा की गाय को दूहे । तब कहीं अहिंसा का दूध मिलेगा ।

तेइ तृन हरित चरै जब गाई ।
भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई ।।
नोइ निबृत्ति पात्र बिस्वासा ।
निर्मल मन अहीर निज दासा ।।

उस अहिंसा के दूध को पकाइए । अहिंसा जब आती है, तब उसके भी अनेक चमत्कार होते हैं, उससे भी विरत हो जाइए । उसे निष्कामता की अग्नि पर पकाइए । पकाने के बाद दूध गाढ़ा हो गया । परन्तु गरम भी तो हो गया । उसको ठण्डा कीजिए अर्थात् इस निष्कामता से गरम न हो जाइए । यदि ऐसा हो जाय, तो क्या करें? क्षमा और सन्तोष रूपी हवा से उसे ठण्डा करें और उसमें धैर्य तथा मनोनिग्रह रूपी जामन देकर उसे जमायें –

परम धर्ममय पय दुहि भाई ।
अवटै अनल अकाम बनाई ।।
तोष मरुत तब छमाँ जुड़ावै ।
धृति सम जावनु देइ जमावै ।।

इन्द्रिय-दमन तथा सत्य की रस्सी हो । उसमें विचार की मथानी को लपेटकर उससे दही का मन्थन किया जाय । मथने वाले के रूप में मुदिता वृत्ति का उदय हो ।

मुदिताँ मथै बिचार मथानी ।
दम अधार रजु सत्य सुबानी ।। ७/११७/९-१५

कितनी कठिन साधना है ! इनमें से हर वस्तु मनुष्य के जीवन में अत्यन्त कठिन है । इतना करने के बाद तब कहीं विमल वैराग्य का नवनीत प्राप्त होता है ।

तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता ।
बिमल बिराग सुभग सुपुनीता ।। ७/११७/१६

परन्तु दीपक मक्खन से तो जलता नहीं है । दीपक जलाना हो, तो पहले मक्खन से घी बनाना पड़ता है । उसके लिये अग्नि जलाइए । अग्नि कौन सी है? और अग्नि को जलाने के लिए लकड़ी भी चाहिए । लकड़ी कौन-सी है? योग की अग्नि को प्रज्वलित कीजिए और उसमें शुभ और अशुभ कर्मों की लकड़ी लगा दीजिए । दोनों को जला दीजिए । और तब मक्खन घी में बदलेगा ।

जोग अगिनि करि प्रगट तब
कर्म सुभासुभ लाइ ।
बुद्धि शिरावै ग्यान घृत
ममता मल जरि जाइ ।। ७/११७ (क)

विमल वैराग्य के बाद जब ज्ञान-घृत बन गया, तो भी उसमें कहीं-न-कहीं ममता का मल शेष रह जाता है । लगता है कि हमारा सभी चीजों से वैराग्य हो गया, पर इस ममता के कण कहीं-न-कहीं छिपे रह जाते हैं । **(क्रमशः)**

सारगाछी की स्मृतियाँ (४५)

स्वामी सुहितानन्द

स्वामी प्रेमेशानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य महासचिव महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

प्रश्न – हम लोगों ने सोचा है, एक बार पैदल जयरामबाटी जायेंगे। क्या यह अच्छा है?

महाराज – निश्चय ही। अभी से मार्ग आदि के बारे में पता कर लो। किधर से जाने में सुविधा होगी, किस ग्राम के बाद कौन सा ग्राम है, किस गाँव में एक रात रहने का सुयोग बन सकता है, यही सब जानकारी कर लो।

प्रश्न – जाने के समय मार्ग में पैसे से खरीद कर कुछ खाना उचित है या भिक्षाटन करके खाना उचित है?

महाराज – यदि साधु-वेश में जाते हो, तो भिक्षाटन करके खाना उचित है। किन्तु सब जगह तो यह सुविधा नहीं होगी। गरीब के घर से भिक्षा माँगकर खा नहीं सकते और यह उचित भी नहीं है। अभी से यह सब पता कर लो।

प्रश्न – ऐसे लोग तो हमेशा नहीं मिलेंगे, जिनसे यह सब पता चल सके। ऐसे लोगों के मिलने पर पता करूँगा।

महाराज – यह सब पता करने से भी कल्याण होता है, यहाँ तक कि जाने का संकल्प करने से भी कल्याण होता है। लोग काशी जाने का संकल्प करते हैं, सुना नहीं है क्या?

शरत महाराज से एक दिन मैंने मानो थोड़ा उद्धत भाव से पूछा था, "जो लोग संघ के नियमों को ठीक से नहीं मानते, उनसे आप कठोर व्यवहार क्यों नहीं करते?" उन्होंने करुण स्वर में उत्तर दिया था, "कठोरता करने पर कोई रहेगा नहीं।" ऐसी है देश की स्थिति ! उद्धतता से पूछने के कारण दुख होता है। किन्तु सोचता हूँ, पूछने के कारण ही तो मैं वह बात सुन सका था।

प्रश्न – ठाकुर जब माणिक राजा के आम के बगीचे में अपने बाल सखाओं के साथ खेल-कूद करते थे, नाटक में अभिनय करते थे, तब वे भाव में बेसुध होकर अचेत हो गए थे, उस समय कान में 'कृष्ण-कृष्ण' नाम का उच्चारण करने से वे सचेत हुए थे, क्या यह बात ठीक है? लीला प्रसंग में तो ऐसा वर्णन नहीं है।

महाराज – हाँ, रामलाल दादा से यह बात हम लोगों ने सुनी है।

१२-९-१९६०

सेवक – शान्तानन्द महाराज और आपने तो विशेष कार्य किया नहीं। आप लोगों को देखकर लगता है कि हम लोग आप लोगों का अनुकरण करें।

महाराज – साधारण साधक के लिए तो चारों योग चाहिए ही चाहिए। ऐसा नहीं होने पर अच्छा नहीं होगा।

जब कर्म करते-करते संसार से वैराग्य हो जाता है, तब ईश्वर के प्रति आकर्षण होता है, उनका स्वरूप जानकर उनसे हर समय संयुक्त रहने की इच्छा होती है।

तोतापुरी का और मेरा एक ही उद्देश्य है, अपने स्वरूप के साथ युक्त हो जाना। तोतापुरी के लिए सभी इच्छाएँ ही यथेष्ट कर्म हैं, किन्तु मेरा चित्त अशुद्ध होने के कारण बहुत परिश्रम करने के बाद लगता है कि हमने कर्म किया। तोतापुरी भक्ति मन में करते हैं और मुझे भक्ति करनी होती है, मंदिर में, प्रसाद के प्रति और कीर्तन में।

ईश्वर किसी दूर-देश में नहीं बैठे हैं। उनका लीला-चिन्तन करने से ही उनका सान्निध्य मिलता है, जैसे चैतन्य देव के जीवन में दृष्टिगोचर होता है, कृष्ण नाम में, कृष्ण सौरभ में, वाणी में बिल्कुल पागल हो जाते थे। हम लोगों में भी जो सांसारिक प्रपंच को छोड़कर नहीं आए हैं, बल्कि ठाकुर के प्रति ठीक-ठीक आकर्षण से आए हैं, उनके लिए भी धीरे-धीरे संसार का रूप-रस अत्यन्त तुच्छ हो जाता है।

१५-९-१९६०

महाराज – सब ध्यान रखना, जितने कम खर्च से काम चला सको। दीनता और ब्रह्मचर्य का व्रत पालन करना। गंगाधर महाराज (स्वामी अखण्डानन्द) कभी भी रामकृष्ण मिशन से व्यक्तिगत खर्च नहीं लेते थे, भिक्षा माँगकर व्यवस्था करते थे। किन्तु आजकल उतना सम्भव नहीं है, कार्य बढ़ गया है।

किसी-किसी के मन में ध्यान की इच्छा जागृत होती है, इससे बहुत अनर्थ हो जाता है। पहले कर्म करो, उपासना करो, सजग होकर देखो कि मन ठाकुर के चिन्तन के आनन्द में तन्मय होता है कि नहीं। जब उठकर आने की इच्छा नहीं होगी, तब समझना होगा कि ध्यान की योग्यता प्राप्त हुई है।

जितने साधु दिखते हैं, सबमें पहले-पहल वैराग्य, त्याग सब कुछ ठीक रहता है, पर वे अन्त तक उसे रख नहीं पाते। भक्त और शिष्यगण माथा चाट जाते हैं। किन्तु बात यह है कि जो संन्यासी होगा, वह शिष्य की ताली पर क्यों नाचेगा? यह कैसा संन्यासी है !

१७-९-१९६०

जो कुछ करना, सर्वदा उसे सोच-विचार कर करना। लक्ष्य और उपाय के सम्बन्ध में बहुत सजग रहना होगा। कोई भी कार्य क्यों न करो, वह कितना ही छोटा क्यों न हो, हर कदम सोच-विचार कर बढ़ाना। हम लोगों का जो यह कार्य हो रहा है, इसकी पद्धति ये लोग नहीं जानते। केवल कार्य करते जाते हैं, इससे चित्तशुद्धि नहीं होती। फिर भी थोड़ा विकास हो रहा है। संन्यासी सदा यह ध्यान रखेगा कि उसका प्रत्येक कार्य उसे मुक्ति-पथ पर ले जा रहा है या नहीं। माता-पिता, धन-सम्पत्ति, मान-वैभव सब कुछ छोड़कर पिता का पिण्डदान कर दिया, यहाँ तक कि अपना पिण्डदान करके, वह समाज की दृष्टि में मृत हो चुका है, फिर उसके कार्य का उद्देश्य ईश्वर-प्रप्ति के अतिरिक्त दूसरा कुछ क्यों होगा?

ठाकुर को पकड़े रहो और नित्य नियमित रूप से श्रीरामकृष्णवचनामृत, श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग और स्वामीजी की ग्रन्थावली पढ़ते रहो, ऐसा करने से देखोगे कि उसमें से ही अचानक तुम्हारे संशय के उत्तर मिल जायेंगे।

१८-९-१९६०

महाराज – संन्यास का अर्थ पैतृक-घर को छोड़ देना नहीं है, चंदे के धन से भोजन करना नहीं है, आश्रमवास करना नहीं है, गेरुआ वस्त्र धारण करना, शिखा (चोटी) रखना कुछ भी नहीं है। प्रत्याहार ही संन्यास का सच्चा अर्थ है। गर्मी-सर्दी, सुख-दुख, मान-अपमान कुछ भी शरीर को स्पर्श न कर सके। इन सबसे मन को पृथक् करके बिल्कुल काष्ठवत् होकर बैठे रहना। इसी तरह रहते हुए पचास वर्ष के बाद एक दिन सुस्पष्ट रूप से देख सकोगे, तुम इस संसार के द्रष्टा मात्र हो। साधु का एक दिन, चोर का दस दिन।

साधु होकर जीवन भर त्याग-वैराग्य में बिता दिया, किन्तु, एक दिन अचानक पथच्युत हो जाने पर उसका सब कुछ व्यर्थ चला गया।

चोर प्रतिदिन चोरी करता है, किन्तु अचानक एक दिन पकड़ा गया, फिर उसे दीर्घकाल का कारावास हुआ। टकसाल में पहरा रहता है। दीर्घ पचास वर्षों तक कोई संकट नहीं आया, फिर भी पहरा रखना पड़ता है। अचानक कुछ दिनों पहले टकसाल पर हमला हो गया।

१९-९-१९६०

महाराज – संन्यासी के जीवन में प्रत्याहार नहीं रहने पर बड़ा दुखद जीवन हो जाता है। प्रत्याहार कैसे करूँगा? अपने इष्टदेव के रूप, लीला, तत्त्वोपदेश में डूब जाने की चेष्टा करो। ऐसा नहीं करने से वृद्धावस्था में बड़े संकट में पड़ जाओगे। या तो अखबार या आश्रम की राजनीति करके समय बिताना पड़ेगा।

जो सारे दिन कुली-मजदूर की तरह परिश्रम करते हैं और रात में शव की तरह पड़े रहते हैं, वे एक तरह से समय तो बिता देते हैं, किन्तु वृद्धावस्था में जब कार्य करने की क्षमता नहीं रह जाती, तब उनका जीवन बड़ा दुखदायी हो जाता है। **(क्रमशः)**

रुपये का अहंकार

किसी मेढ़क के पास एक रुपया था। वह एक बिल में रखा रहता था। एक हाथी उस बिल को लाँघ गया। तब मेढ़क बिल से निकलकर बड़े गुस्से में आकर लगा हाथी को लात दिखाने ! और बोला, तुझे इतनी हिम्मत कि मुझे लाँघ जाए !

रुपये का इतना अहंकार होता है।

– श्रीरामकृष्ण देव

हिमालय की गोद में स्वामी विवेकानन्द

मोहन सिंह मनराल, अलमोड़ा

(गतांक से आगे)

स्वामीजी ने विश्राम और स्वास्थ्य को समर्पित इस प्रवास को लेखन, चिन्तन, मनन आदि में संयुक्त कर अपने और राष्ट्र के लिए उपयोगी बना दिया। इसके पूर्व भी हमारे देश के महान लोगों जैसे तिलक, गाँधी, नेहरू आदि ने स्वतंत्रता संग्राम में जेल-प्रवास में अधिकांश लेखन कार्य किया था। पं. नेहरू ने तो अपनी सभी पुस्तकें जेल में ही लिखीं। जीवन की निर्धारित अवधि के बीच समय का अधिकतम उपयोग करने की यह कला है। स्वामीजी ने भी ४० वर्ष के छोटे से जीवन काल में शताब्दियों के लिए सब कुछ कह दिया। उनके अनुसार अब केवल उस पर अँगुलियाँ घुमाने से ही काम हो जायेगा। इस प्रवास में उन्होंने अपने शक्तिदायी विचारों को लेखनी द्वारा पत्रों के पंख लगाकर विश्व में फैला दिया, ऐसे २२ पत्र उनकी पत्रावली में प्रकाशित हुए हैं। दूसरी ओर ज्ञान, कर्म, भक्ति के साथ अपनी भावी योजनाओं की रूपरेखा भी है।

३० मई, १८९७ को वे प्रमदादास मित्र को लिखते हैं, ''...उपनिषद गीता सच्चे शास्त्र हैं और राम, कृष्ण, बुद्ध, चैतन्य, नानक, कबीर सच्चे अवतार हैं, क्योंकि उनके हृदय आकाश के समान विशाल थे और इन सबमें श्रेष्ठ हैं रामकृष्ण।'' ९ जुलाई १८९७ के महत्त्वपूर्ण पत्र में स्वामीजी ने लिखा, ''मैं जानता हूँ, मेरा कार्य समाप्त हो चुका है। मुझे अपनी मुक्ति की इच्छा अब बिलकुल नहीं है। मेरी अभिलाषा है कि मैं बार-बार जन्म लूँ और हजारों दुख भोगता रहूँ, ताकि मैं उस एकमात्र ईश्वर की पूजा कर सकूँ, जिसकी सचमुच सत्ता है, अर्थात् सम्पूर्ण आत्माओं की समष्टि रूपी ईश्वर की सबसे बढ़कर सभी वर्णों के पापी-तापी और दरिद्ररूपी ईश्वर ही मेरे विशेष उपास्य हैं।'' (पत्रावली पृ.-११६)

इस पत्र में स्वामीजी के हृदय की करुणा व पीड़ा एक साथ बह निकली, मानवता के प्रति उनका मतवाला प्रेम सभी सीमाओं को लांघकर उन हिमनदों की भाँति बह निकला था, जिनके तटों पर मानव सभ्यता फलती-फूलती और नवजीवन प्राप्त करती है। इस भाव में उन्होंने अपनी प्रसिद्ध कविता 'जाग्रत देवता' की रचना की, जिसमें वे मनुष्य में ईश्वर का दर्शन करने की शिक्षा दे रहे हैं –

ओ विमूढ़ जाग्रत देवता की उपेक्षा मत करो

उसके अनन्त प्रतिबिम्बों से ही यह विश्व पूर्ण है।

जो तुम्हें विग्रहों में डालती है, उस परम प्रभु की उपासना करो, जिसे सामने देख रहे हो, अन्य सभी प्रतिमाएँ तोड़ दो।।'' (कवितावली पृ.-१४)

इसी पत्र में वे आगे लिखते हैं, ''सारे सांसारिक प्रेम की जड़ एकमात्र देह ही है। काम-कंचन को त्याग दो, इनके जाते ही हमारी दिव्य दृष्टि खुल जायेगी और आध्यात्मिक सत्य का साक्षात्कार हो जायेगा। तभी आत्मा को अपनी अनन्त शक्ति पुन: प्राप्त हो जायेगी।''

इन पत्रों को पढ़कर किसके हृदय में बल का संचार नहीं होगा, उत्साह नहीं जगेगा। यही तो विवेकानन्द का सच्चा स्वरूप था। योगी कितने हुए, प्रखर मेधावी, शक्तिशाली और चमत्कारी पुरुषों से यह जगत भरा पड़ा है, किन्तु ऐसे हृदयवान कितने हुए, जिन्होंने बुद्ध के समान एक मेमने के बदले स्वयं को बलिदान के लिए प्रस्तुत कर दिया हो। स्वामीजी इसीलिए हृदय को छू जाते हैं। मरणासन्न को भी उठकर बैठ जाने को बाध्य कर देते हैं, यह था उनका विशाल करुणामय हृदय, जिसमें सारा ब्रह्माण्ड समा जाता है। तब कौन अभागा वंचित रह पायेगा? इसीलिये वे समय की धारा को मोड़ने में सफल हुए। उन्होंने नवीन हिन्दू धर्म की सृष्टि कर डाली, वन के वेदान्त को झोपड़ियों में ला दिया। इसीलिए ठाकुर उन्हें इतना प्रेम करते थे, श्रीमाँ आशीर्वाद देती थीं। हिमालय की गोद में उनका यह ऋषित्व जाग्रत होकर पूरे विश्व में फैल गया, यही इस एकान्तवास का अमृत कहा जा सकता है।

देउलधार के एकान्तवास से लौटकर अल्मोड़ा शहर में स्वामीजी के तीन व्याख्यान हुए, किन्तु ये व्याख्यान लिपिबद्ध नहीं हो सके। उन्होंने जिला स्कूल में हिन्दी भाषा में व्याख्यान दिया, जिसे सरकारी हस्तक्षेप से बीच में ही रोक दिया गया। इसकी प्रतिक्रिया में बद्रीदत्त पाण्डे जो आगे चलकर स्वतंत्रता सेनानी सिद्ध हुए, ने कहा था, ''उनके अधूरे भाषण को

सुनकर मुझे प्रेरणा मिली, काश मैं भी ऐसा ही भाषण दे सकता।'' २८ जुलाई को इंग्लिश क्लब और ३१ जुलाई को विद्यालय प्रांगण में आत्मा जैसे गहन विषय पर स्वामीजी की वाणी सुनकर श्रोता कुछ समय के लिए अपना देहभान भूल गये। इसी के साथ स्वामीजी के इस प्रवास का समापन हुआ और वे २ अगस्त १८९७ को अल्मोड़ा से चलकर बरेली, पंजाब, अम्बाला होते हुए कश्मीर हिमालय की ओर बढ़ गये। कश्मीर में उन्होंने १३ सितम्बर से ८ अक्टूबर तक लगभग २५ दिन निवास किया और नवम्बर में देहरादून होते हुए वे वापस बेलूड़ लौट गये।

उत्तराखण्ड हिमालय की भाँति कश्मीर भी स्वामीजी को अत्यधिक प्रिय था, वे इसे भू-स्वर्ग कहते थे। वे १८९८ में लगभग ४ माह तक कश्मीर में रहते हैं और अमरनाथ की यात्रा पर जाते हैं। इससे स्वामीजी का हिमालय-प्रेम झलकता है। कश्मीर के बारे में १८९७ के अपने एक पत्र में वे श्रीमती इन्दुमती को लिखते हैं, ''कश्मीर वास्तव में ही भू-स्वर्ग है। ऐसा देश पृथ्वी में दूसरा नहीं है। यहाँ पर जैसे सुन्दर पहाड़, वैसी ही नदियाँ, वैसी ही वृक्ष लताएँ, वैसे ही स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी आदि सुन्दर हैं। अब तक न देखने के कारण मन दुखी होता है।'' (पत्रावली पृ.१४८)

स्वामीजी ने हाउस बोट में निवास किया, सुन्दर झीलों का आनन्द लिया, केसर के खेतों को देखा। पाण्डवों के मंदिरों का दर्शन किया। वे हिमालय-दर्शन और निवास से अभिभूत हो गए।

दार्जिलिंग हिमालय से लौटकर ठीक एक वर्ष बाद १८९८ ई. में स्वामीजी ने अपने पाश्चात्य देशों से आये भक्तों के साथ हिमालय की ओर जाने का निश्चय किया। जनवरी १८९८ में इंगलैंड से मार्गरेट नोबल, तो फरवरी में अमेरिका से कुमारी मैकलाउड भारत आईं। इसी प्रकार श्रीमती ओली बुल, कुमारी मूलर, श्रीमती पैटर्सन भारत आईं। सेवियर दम्पत्ति पहले ही भारत आ चुके थे। स्वामीजी को इन सबका परिचय यथार्थ भारत से कराना था और भारतीय सभ्यता व जनमानस से जोड़ना था, ताकि वे कार्यक्षेत्र में लग जाएँ। इन सारे लक्ष्यों को साधते हुए ११ मई, १८९८ को हावड़ा स्टेशन से वे हिमालय की ओर अपनी टोली के साथ चल पड़े। उनके साथ गुरुभ्राता स्वामी तुरीयानन्द, स्वामी निरंजनानन्द और उनके शिष्य स्वामी सदानन्द तथा स्वामी स्वरूपानन्द भी थे। १३ मई को वे काठगोदाम पहुँचकर नैनीताल के लिये चल पड़े। रेलगाड़ी से जिन मैदानी भागों को वे देखते, उनके बारे में अपनी शिष्याओं से चर्चा करते। निवेदिता अपनी पुस्तक 'Master As I Saw Him' नामक पुस्तक में लिखती हैं, ''आर्यावर्त के सुविस्तृत खेत-खलिहानों और ग्रामों से परिपूर्ण मैदानी अंचल से जाते समय उनका प्रेम-आनन्द उनके नेत्रों से फूट पड़ता और कण्ठस्वर मर्मस्पर्शी हो जाता, यह उनके परिव्राजक दिनों की स्मृतियों के फलस्वरूप होता था।''

यह वही भारत था, जहाँ अपने परिव्रजन काल में उन्होंने क्या-क्या नहीं सहा। भारत की मिट्टी को स्वर्ग कहनेवाले स्वामीजी ने नंगे-पाँव भूखे-प्यासे गरीबों की झोपड़ियों में झाँककर उनकी दरिद्रता का अनुभव किया था। इस अवस्था का वर्णन वे एक व्याख्यान में करते हैं, ''दस वर्ष बीत गये, पर प्रकाश न मिला। इधर स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन क्षीण होता चला। अधिकांश समय पैदल ही चलते। कभी-कभी तो दस मील पहाड़ पर चढ़ते जाते, केवल इसलिये कि एक बार का भोजन मिल जाय। बताओ भला भिखारी को कौन अपना अच्छा भोजन देता है? फिर सूखी रोटी ही भारत में उनका भोजन है। कई बार तो वे बीस-तीस दिन के लिए इकट्ठी कर ली जातीं। मैं तो रोटी को एक पात्र में रख देता और उसमें नदी का पानी उड़ेल देता था। इस तरह महीनों गुजारने पड़े।'' (वि.सा. १०/१)

इतनी गहरी अनुभूतियों के साथ किया गया वर्णन हृदय पर कैसी छाप छोड़ता होगा, यह कल्पनातीत है। इस मर्मस्पर्शी वृत्तान्त के साथ स्वामीजी ने झीलों के शहर नैनीताल में प्रवेश किया, जहाँ उनके शिष्य खेतड़ी (राजस्थान) के राजा अजित सिंह ने उनका स्वागत किया, वे वहाँ ग्रीष्मकाल बिता रहे थे। स्वामीजी ने १४ से १६ मई तक नैनीताल में निवास किया, जहाँ उनकी भेंट एक मुस्लिम साधक सरफराज हुसैन से हुई, जो स्वामीजी से प्रभावित हो उनके शिष्य बन गए। उन्होंने स्वामीजी से कहा, यदि भविष्य में आपको कोई अवतार घोषणा करे, तो स्मरण रहे कि मैं एक मुसलमान उनमें से प्रथम हूँ।'' उनके पत्र के उत्तर में स्वामीजी ने अल्मोड़ा से १० जून, १८९८ को लिखा, 'वेदान्त के सिद्धान्त कितने ही उदार और विलक्षण क्यों न हों, परन्तु व्यावहारिक इस्लाम की सहायता के बिना मनुष्य जाति के महान जनसमूह के लिये वे मूल्यहीन हैं। हमारी मातृभूमि के लिये इन दोनों विशाल मतों का सामंजस्य

हिन्दुत्व और इस्लाम, वेदान्ती बुद्धि और इस्लामी शरीर यही एक आशा है।'(पत्रावली पृ.-१४)

१६ मई को स्वामीजी ने अल्मोड़ा के लिये प्रस्थान किया और १७ मई से १० जून तक २४ दिन का यह प्रवास उनकी अन्तिम अल्मोड़ा-यात्रा सिद्ध हुई। इस प्रवास में उन्होंने एक ओर अपनी शिष्याओं को प्रशिक्षित किया, तो दूसरी ओर अपने हिमालय मठ और 'प्रबुद्ध भारत' के प्रकाशन का कार्य आगे बढ़ाया। अल्मोड़ा का थामसन हाउस उनकी इन गतिविधियों का साक्षी बना।

'थामसन हाउस' अल्मोड़ा में स्वामी विवेकानन्द

अल्मोड़ा के लाला बद्रीशाह ने अपने पिता श्री हरिशाह द्वारा खरीदे गये दो भवन स्वामीजी के प्रवास हेतु समर्पित किए। इनमें प्रमुख था 'थामसन हाउस' जो अल्मोड़ा के पश्चिमी छोर पर स्थित था और दूसरा था अन्ठा हाउस जिसे ओकले हाउस भी कहा जाता था। इसमें स्वामीजी की शिष्याएँ रहीं। यह थामसन हाउस से कुछ दूरी पर स्थित है। थामसन हाउस में स्वामीजी ने लगभग २३ दिन निवास किया, किन्तु बीच में कुछ दिनों के लिए वे साधना हेतु अन्यत्र भी गये।

स्वामीजी रोज नाश्ते के बाद ओकले हाउस आते और अपनी शिष्याओं से विविध विषयों पर रोचक और लम्बी बातें करते। उनका उद्देश्य होता उन्हें भारतीय संस्कृति, इतिहास, धर्म, दर्शन, रीति-रिवाजों से परिचित कराना और उनके मन से पश्चिमी संस्कारों का उन्मूलन कराना, ताकि वे पूरा समर्पण कर सकें। इसी प्रशिक्षण काल में निवेदिता द्वन्द्वों में थीं। उनके मार्ग में जन्मगत संस्कार और ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति निष्ठा समर्पण में बाधक बन रही थी। जब कु. मैक्लाउड ने स्वामीजी को इस अवस्था से अवगत कराया, तो उन्होंने इसे सुना और बिना कुछ कहे चले गये। उन्होंने इस चुनौती को स्वीकार कर अगले दिन उनसे कहा, ''इस स्थिति को बदलना ही पड़ेगा। मैं कुछ देर एकान्तवास के लिये जा रहा हूँ, जब वहाँ से लौटूँगा, तो अपने साथ शान्ति लेते आऊँगा।'' उन्होंने क्षण भर आकाश में उदित क्षीण चन्द्ररेखा की ओर निहारते देवदार के नीचे खड़ी निवेदता से कहा, ''मुसलमान लोग नवीन चन्द्रमा का बड़ा आदर करते हैं। आओ हम भी आज नवीन चन्द्रमा के साथ नवजीवन का आरम्भ करें।'' निवेदिता घुटनों के बल अभ्यर्थना की मुद्रा में स्वामीजी के चरणों में बैठी देखती हैं, स्वामीजी के मंगलमय हाथों ने ईश्वर के सर्वश्रेष्ठ आशीर्वाद के रूप में उसके मस्तक को स्पर्श किया, इस क्षणिक दिव्य स्पर्श ने उसके हृदय में महान परिवर्तन ला दिया। आवरण हट गया और रिक्तता पूर्ण हो गई। श्रीरामकृष्ण देव की भविष्यवाणी सच हो गई, ''एक दिन ऐसा आयेगा, जब नरेन्द्र दूसरों में ज्ञान का संचार कर देगा।''

इसी तरह की एक अन्य इच्छा जो श्रीरामकृष्ण देव ने १३ वर्ष पूर्व १८८५ में दक्षिणेश्वर में प्रकट की थी, इस बार अल्मोड़ा में पूर्ण हुई। वह थी प्रसिद्ध देशभक्त श्री अश्विनीकुमार दत्त से स्वामीजी का वार्तालाप। १८९८ में अश्विनी बाबू अल्मोड़ा में निवास कर रहे थे। जब उन्हें स्वामीजी के बारे में पता चला, तो वे उनसे मिलने पहुँचे। दोनों में विभिन्न विषयों पर वार्तालाप हुआ। अश्विनी बाबू ने स्वामीजी से पूछा कि क्या धर्म से आपका आशय किसी विशेष मतवाद से है? तो स्वामीजी ने उत्तर दिया, ''ठाकुर ने वेदान्त को ही सर्वांगीण और समन्वयपूर्ण धर्म बतलाया है। अत: मैं भी उसी का प्रचार करता हूँ, किन्तु मेरी दृष्टि में धर्म का सार है बल, ऐसा धर्म जो हृदय में बल का संचार नहीं करता, वह चाहे उपनिषद का हो, गीता का हो या भागवत का, मैं उसे धर्म मानता ही नहीं।''

अश्विनी बाबू के अलावा श्रीमती एनी बेसेन्ट और मराठी के सुप्रसिद्ध लेखक भार्गव राम विट्ठल उर्फ मामा वरेरकर ने स्वामीजी से भेंट की १९६३ ई० में आकाशवाणी से अपने संस्मरण देते हुए स्वामीजी के इस प्रवास की चर्चा इन शब्दों में की, ''अल्मोड़ा थामसन हाउस १८९८ में संन्यासियों के मेले में मैं आराम से जीवन बिताने लगा। स्वामीजी, तुरीयानन्द, निरंजनानन्द, सदानन्द, स्वरूपानन्द जैसे महानुभावों के साथ चार विदेशी महिलाएँ भी आश्रम में रहती थीं। विदेशी शिष्याओं को स्वामीजी हमारे इतिहास की पुण्य कथायें सुनाते थे। स्वामीजी की आवाज असामान्य थी। भारत के महान गायकों को मैंने देखा और सुना है, पर आवाज का यह जादू मैंने किसी में नहीं पाया। स्वामीजी लगभग दो घण्टे ध्यानस्थ होकर बैठते थे। जब तक स्वामीजी का ध्यान न टूटता, अन्य संन्यासी भी ध्यानस्थ बैठे रहते।''

स्वामीजी के ध्यानस्थ होने की यह प्रक्रिया थामसन हाऊस तक ही सीमित नहीं रहती। निवेदता लिखती हैं कि वे आसपास के निर्जन वन में प्रतिदिन लगभग १० घण्टे ध्यानस्थ व्यतीत करते थे। ऐसे ही एक अभियान में वे २५ मई को पश्चिम की ओर चल पड़े और २८ मई को वापस

आये। समझा जाता है कि वे अल्मोड़ा से कुछ दूरी पर स्थित सैयादेवी के शिखर पर तपस्या के लिये चले गये थे। इस प्रकार हिमालय की इस तपोभूमि पर स्वामीजी का विश्राम गहन आत्मावगाहन में बीतता रहा। शिव और माँ जगदम्बा की इस पावन भूमि पर वे ईश्वर को ही सर्वत्र विस्तीर्ण देख रहे थे, तभी उन्होने एक दिन उषाकाल में शुभ्र हिमशिखरों पर सूर्य की पहली रक्तिम किरणों के आलोक को देखते हुए इशारा करते हुए इसी स्थान से कहा था, ''वे जो ऊपर शुभ्र हिमाच्छादित शिखर देख रहे हो, वे ही शिव हैं और उन पर जो आलोक पड़ रहा है, वे ही जगदम्बा हैं।''

आत्मा की अनन्त गहराइयों में डूबते-उतराते स्वामीजी के दिन हिमालय की गोद बीत रहे थे। तभी क्रमश: तीन शोक समाचारों ने उनके हृदय को व्यथित कर दिया। पहला समाचार था पवहारी बाबा का, दूसरा उनके प्रिय आशुलिपि लेखक गुडविन और तीसरा, प्रबुद्ध भारत के सम्पादक मद्रास के श्री बी. राजम् अय्यर के निधन का। तीनों के प्रति स्वामीजी का अथाह प्रेम था। गुडविन की मृत्यु का समाचार सुनकर उन्होंने कहा,''अब जनता में मेरी भाषण देने के दिन समाप्त हो गये, उसके उपकार से मैं कभी उऋण नहीं हो सकता। जिन लोगों को मेरे विचारों से थोड़ी भी प्रेरणा प्राप्त हुई, उन्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि इसका प्रत्येक शब्द श्री गुडविन के अथक एवं परम नि:स्वार्थ परिश्रम के कारण ही प्रकाशित हो पाया, उसकी मृत्यु से मैं अपना एक सच्चा मित्र, भक्तिमान शिष्य तथा एक अद्भुत कर्मकुशल व्यक्ति खो चुका हूँ।''

श्री अय्यर की मृत्यु के कारण 'प्रबुद्ध भारत' को अब मद्रास से प्रकाशित करना सम्भव न था, अत: स्वामीजी ने उसे अल्मोड़ा से प्रकाशित करने का निर्णय लिया और यह उत्तरदायित्व अपने अँग्रेज मित्र सेवियर को सौंपा। कैप्टन सेवियर ने एक हस्तचालित प्रेस की व्यवस्था की और इसी पर छपकर अगस्त १८९८ में प्रबुद्ध भारत का प्रथम अंक अल्मोड़ा से प्रकाशित हुआ। स्वामीजी की दो कविताएँ भी प्रकाशित हुईं, जिसे उन्होंने इस प्रवास के अन्त में अल्मोड़ा में ही रची थीं। एक थी गुडविन की आत्मा की चिरशान्ति हेतु प्रार्थना, 'उसे शान्ति में विश्राम मिले' और दूसरी 'प्रबुद्ध भारत के प्रति'। कविता की कुछ पंक्तियाँ हैं –

''**जागो फिर एक बार !**
यह तो केवल निद्रा थी मृत्यु नहीं थी।
नवजीवन पाने के लिये, उन्मुक्त साक्षात्कार के लिए।''

इसके साथ ही स्वामीजी का अल्मोड़ा प्रवास समाप्त हुआ। शोक-संवादों से आघातित वे असुविधा अनुभव करने लगे। यह सब देखकर सेवियर दम्पती ने उन्हें कश्मीर की यात्रा पर जाने का सुझाव दिया, जिसे उन्होंने तुरन्त स्वीकार कर लिया। ११ जून, १८९८ को वे विदेशी शिष्याओं को साथ लेकर कश्मीर की यात्रा पर निकल पड़े। यह उनका अन्तिम अल्मोड़ा प्रवास सिद्ध हुआ। इसके बाद हम उन्हें चौथी बार १९०१ ई. में हिमालय के मायावती के आश्रम में देखते हैं, यही उनकी अन्तिम हिमालय-यात्रा थी।

भूस्वर्ग कश्मीर में बाबा अमरनाथ के दर्शन

एक वर्ष बाद १८९८ में स्वामीजी ने अपनी शिष्य-मण्डली के साथ महत्त्वपूर्ण कश्मीर हिमालय की यात्रा की। इस यात्रा में उन्होंने बाबा अमरनाथ के दर्शन किये और इच्छामृत्यु का वरदान लेकर कालजयी हुए। पहली बार उन्हें देववाणी सुनाई पड़ी और उन्होंने स्वयं को समग्र रूप से जगजननी के आगे समर्पित कर दिया। धन्य है पर्वतराज हिमालय की यह देव भूमि ! एक साथ श्रीमती पैटर्सन, ओली बुल (धीरा माता) तथा कु. मैक्लाउड (जया) ये तीन अमेरिकी और भगिनी निवेदिता अंग्रेज थीं। यह टोली १५ जून को मरी पहुँची और यहाँ तीन दिन विश्राम के उपरान्त १८ जून से यात्रा प्रारम्भ की।

बारामूला के पथ पर स्वामीजी हिमालय की स्फूर्तिदायी वायु और मनोरम दृश्यावलियों का अवलोकन कर गहन आत्मप्रदेश में डूब गये। उनका यह भावान्तर शिव के प्रति उनकी स्मृतियों को खोलता चला गया और वे सदा शिव के बारे में बोलते रहे। उन्होंने अपनी माता द्वारा बचपन में नटखटपन को शान्त करने के लिये 'शिव-शिव' कहकर सिर पर जल डालने का उल्लेख किया। बारामूला से २० जून को वे कश्मीर घाटी की ओर चल पड़े। उनके संग किसी पुरुष संगी के न होने के कारण उन्हें स्वयं ही नाव ढूँढ़ने जाना पड़ा, जहाँ एक व्यक्ति ने स्वप्रेरणा से यह भार अपने ऊपर ले लिया। इस पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने शिष्याओं से कहा, ''भाग्यवान का बोझ भगवान ही वहन करते हैं।'' नावों में उन्होंने श्रीनगर की ओर प्रस्थान किया। कश्मीर घाटी पहुँचकर प्रात: भ्रमण के दौरान उन्होंने पूर्व यात्रा में परिचित एक मुसलमान वृद्धा से भेंट की। उन्होंने पूछा, 'माँ तुम किस धर्म की अनुयायी हो?' वृद्धा ने उत्तर दिया था, 'खुदा का

शुक्र है कि मै मुसलमान हूँ।' स्वामीजी वृद्धा के आत्मगौरव व स्वाभिमान की सदा प्रशंसा करते थे।

२२ जून को श्रीनगर पहुँचने के बाद शिष्याओं ने स्वामीजी को एकान्तप्रिय और गहन मौन धारण किये पाया। वे अलग दूसरे बजरे में रहते थे। श्रीनगर के ऐतिहासिक और धार्मिक स्थानों, मन्दिरों आदि के भ्रमण और स्थानीय लोगों से चर्चा के बाद वे अधिक गम्भीर एकान्तप्रिय और ध्यानमग्न रहने लगे। लगभग पूरा जून इसी अवस्था में बीत गया। अब आई कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण चार जुलाई। यह दिन संयुक्त राज्य अमेरिका का स्वाधीनता दिवस है। स्वामीजी ने इसी देश के मंच से अपना कार्य आरम्भ किया था। उन्होंने अमेरिका को मानव की स्वतंत्रता के पक्षधर के रूप में देखा था और वे स्वतंत्रता को विकास की पहली शर्त मानते थे। अपने साथ अमेरीकी शिष्याओं को स्वामीजी ने प्रात:काल जलपान के समय निवेदिता की सहायता से एक दर्जी द्वारा तैयार अमेरिकी राष्ट्रध्वज भेंट किया और साथ में अपनी एक कविता सुनाकर सबको आश्चर्यचकित कर दिया। कविता का शीर्षक था 'चौथी जुलाई के प्रति'। २२ जुलाई तक स्वामीजी ने कश्मीर के अनेक स्थानों का भ्रमण किया। स्वामीजी ने बाबा अमरनाथ के दर्शन हेतु जाने का निर्णय लिया। निवेदिता उनके साथ चलेगी और शेष जन पहलगाम तक जायेंगे और उनकी वापस लौटने तक प्रतीक्षा करेंगे। आज की तुलना में तब यह यात्रा काफी कठिन थी। फिर भी साधु लोग हर कठिनाइयों का सामना कर बाबा के दर्शन को जाते थे।

तम्बु आदि खरीद कर २६ जुलाई, १८९८ को स्वामीजी ने अपनी मानसपुत्री निवेदिता के साथ दैवी प्रेरणा से इस ऐतिहासिक यात्रा का शुभारम्भ किया, जिसने उन्हें मृत्युञ्जय बना दिया। **(क्रमश:)**

काम को जीतूँगा, क्रोध को जीतूँगा, यह कहकर चेष्टा करने से रिपुओं को वश में नहीं लाया जा सकता। भगवान में मन लगाने से वे सब आप ही आप कम हो जाते हैं। श्रीरामकृष्ण देव कहते थे, ''पूर्व की ओर चलने से पश्चिम अपने आप ही पीछे हो जाता है, कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता।'' उन्हें पुकारो, उन्हें पुकारने से रिपु आदि न जाने कहाँ भाग जाएँगे।

– स्वामी ब्रह्मानन्द (श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य)

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

२९६. जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि

एक बार भगवान श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से जाकर कहा, ''यदि तुम्हें कोई दुर्जन व्यक्ति दिखाई दे, तो तुम उसे लेकर मेरे पास आना। मैं उसे सज्जन बनाने का प्रयास करूँगा।'' युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण की बात सुन ली। वे चार दिनों तक चारों ओर भ्रमण करते रहे, किन्तु उन्हें सभी लोग सदाचारी और सज्जन ही दिखाई दिए। कहीं कोई दुर्जन व्यक्ति दिखाई नहीं दिया। दुखी मन से उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा, ''भगवन् ! मैंने चारों ओर भ्रमण किया। सबसे मिला। लेकिन कहीं भी मुझे कोई दुर्जन नहीं दिखाई दिया। सभी मुझे गुणी ही लगे। इसलिए मैं आपकी इच्छा पूर्ण नहीं कर सका।''

तब भगवान श्रीकृष्ण दुर्योधन के पास गए। उन्होंने उससे कहा, ''यदि तुम्हें कोई सज्जन दिखाई दे, तो उसे मेरे पास लेकर आना। मैं उसकी सज्जनता की परख करना चाहता हूँ।'' दूसरे ही दिन दुर्योधन भगवान श्रीकृष्ण के पास आ गया और उनसे कहा, ''आप भी बड़े विचित्र हैं ! आपने यह कैसे सोच लिया कि इस संसार में कोई सज्जन भी है। न चाहते हुए भी केवल आपके कहने पर मैंने यह जानने की कोशिश की कि क्या शहर में कोई सज्जन है, किन्तु मुझे ऐसा कोई व्यक्ति दिखाई नहीं दिया, जिसमें कोई दुर्गुण या दोष न हो।''

तब भगवान श्रीकृष्ण ने मन-ही-मन कहा – ''इससे यह बात सिद्ध होती है कि मनुष्य का दृष्टिकोण उसके स्वयं के स्वभाव के अनुसार बनता है। इसीलिए सज्जन को प्रत्येक व्यक्ति सदाचारी और दुर्जन को प्रत्येक व्यक्ति दुराचारी ही दिखाई देता है।''

हमारा अन्त:करण शीशे की तरह होता है। जैसे शीशे में हमारा स्वरूप जैसा होता है, वैसा ही दिखाई देता है। उसी प्रकार हमारा जैसा स्वभाव होता है, हम दूसरों को भी अपने स्वभाव के समान ही मानते हैं। इसीलिए गुणग्राहक को हर व्यक्ति गुणी और दुष्ट को प्रत्येक व्यक्ति दुष्ट ही दिखाई देता है। अत: हमें दुर्विचारों के जाल में न फँसकर सहृदय होना चाहिए और अपने में सद्गुणों का ही विकास करना चाहिए। ○○○

आध्यात्मिक जिज्ञासा (७)

स्वामी भूतेशानन्द

(ईश्वरप्राप्ति के लिये साधक साधना करते हैं, किन्तु ऐसी बहुत सी बातें हैं, जो साधक की साधना में बाधा बनकर उपस्थित होती हैं। साधक के मन में बहुत से संशयों का उद्भव होता है और वे संशय उसे लक्ष्य पथ में भ्रान्ति उत्पन्न कर अभीष्ट पथ में अग्रसर होने से रोकते हैं। इन सबका सटीक और सरल समाधान रामकृष्ण संघ के द्वादश संघाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज ने दिया है। इसका संकलन स्वामी ऋतानन्द जी ने किया है, जिसे हम 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु प्रकाशित कर रहे हैं। – सं.)

– यदि उनका कुछ भी न हो, तो वे नहीं हैं, शून्य हैं।

महाराज – शून्य तो शब्द द्वारा कहना हुआ।

– हम लोग तो वही बात कह रहे हैं। शब्द के द्वारा प्रकाशित वस्तु ही है , शब्द के अतीत कोई वस्तु नहीं है।

महाराज – शब्दातीत कहते ही ब्रह्म के स्वरूप को समझाना हुआ। स्वरूप को मुख से कहा नहीं जा सकता। यह जो मुख से नहीं कहा जा सकता, इसे ही ब्रह्म को समझाना कहते हैं।

– इसे भी तो समझना होगा। कहा नहीं जा सकता, यह सुनकर हमलोग भी तो नहीं समझ सकेंगे। किस अर्थ में कहा नहीं जा सकता? क्यों नहीं कहा जा सकता?

महाराज – कहा नहीं जा सकता, यह भी तो कहा जा रहा है। ये तो उलटी बात है। कहा नहीं जा सकता, वह शब्दातीत है। उसे पुन: नहीं कहा जा सकता, यही कहना हुआ। ये कौन-सी बात है ?

– पूर्वपक्ष की बात यह है कि जिसके जानने का कोई उपाय नहीं है, वह कैसे विद्यमान है?

महाराज – नहीं, नहीं। बता रहा हूँ। जिसके सम्बन्ध में कोई संशय नहीं है, उसको अलग से प्रमाणित करने की क्या आवश्यकता है?

– कोई संशय नहीं है !

महाराज – क्या तुम्हें संशय है कि तुम हो या नहीं? तुम्हारा अस्तित्व है या नहीं?

– अपने अस्तित्व के सम्बन्ध में मुझे कोई संशय नहीं है।

महाराज – सन्देह नहीं है। अभी तुम्हारा अस्तित्व क्या है, उस पर विचार करते-करते सब शून्य हो जायेगा। तुम्हारा अस्तित्व खोजने पर कुछ भी नहीं मिलता। यही तुम्हारा स्वरूप है।

(५)

प्रश्न – वैशाखी पूर्णिमा को त्रिवार धन्य क्यों कहा जाता है महाराज?

महाराज – भगवान बुद्ध का उस दिन जन्म, बोधिप्राप्ति (ज्ञानप्राप्ति) और महासमाधि हुई थी।

– आर्य सत्य क्यों कहते हैं?

महाराज – आर्यों के द्वारा परीक्षित सत्य को आर्यसत्य कहते हैं। यहाँ आर्य का अर्थ जाति नहीं है, जो पूज्य हैं, उनके द्वारा परीक्षित सत्य।

किसी महाराज के द्वारा शरीर की कुशलता के बारे में पूछने पर महाराज ने कहा – ''शरीर जाने दुख जाने, मन तुम आनन्द में रहो।'' हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द जी) बार-बार ठाकुर के इस बात को कहते थे। किन्तु किसी दूसरे से ठाकुर ने ऐसा कहा है या नहीं, इसका उल्लेख नहीं मिलता।

– निर्वाण क्या है महाराज?

महाराज – अहमात्मिका बुद्धि की निवृत्ति है। चित्तवृत्ति, वासना या तृष्णा की निवृत्ति है। उससे क्या होता है, जो 'मैं मैं' कर रहा है, उसका अन्त हो जाता है। दीपक बुझ जाता है।

– तब क्या रह गया?

महाराज – कुछ भी नहीं रहा, क्या तुम चाहते हो, 'मैं' रह जाय?

– 'मैं' नहीं रहने पर अभाव किसका होगा?

महाराज – प्रवर्तक का होगा। जो इस पथ पर चलेगा,

उसका होगा।

– प्रवर्तक नहीं रहने पर निर्वाण किसका होगा?

महाराज – दीपक जल रहा है, उसके बाद निर्वाण हुआ (बुझ गया)। वासना रूपी तेल का दीप जल रहा था। तेल समाप्त हो गया। दीप बुझ गया।

– यह तो मक्खी को मारने के लिए व्यक्ति को ही मार देना हुआ।

महाराज – तुम तो कटाक्ष कर रहे हो। इसका अर्थ है कि, तुम व्यक्ति को बचा कर रखना चाहते हो? इसी का नाम वासना है। निर्वाण में अनन्त वासनाओं की निवृत्ति होगी।

– तब निर्वाण किसके लिए?

महाराज – 'किसी' ने कहा सत्य होता, तो 'किसका' निर्वाण, यह प्रश्न उठता। जिसे दीप शिखा कह रहे हो, वह ज्वलन्त तेल बिन्दु ही दीप शिखा के रूप में प्रतीत हो रहा है। जब ज्वलन्त तेलबिन्दु रहा ही नहीं, तब क्या रहा? व्यक्ति क्या चाहता है? दुख की निवृत्ति चाहता है। किसके दुख की निवृत्ति चाहता है। जिसे दुख हो रहा है, उसके दुख की निवृत्ति चाहता है। जिसे दुख ही नहीं हो रहा है, दुख की निवृत्ति हो गयी, उसका दुख कहाँ रहेगा?

– 'अंहकार' का विनाश क्यों चाहता है?

महाराज – सामान्य मनुष्य तो इस संसार का ही भोग करना चाहता है। इसीलिये अहंकार को बचाकर रखना चाहता है। अहंकार से जो बन्धन होता है, जब वह चला जाता है, तब अहंकार रहा कहाँ? तुम-मैं कुछ भी नहीं रहा। ब्रह्म-स्वरूप में अहंकार-टहंकार नहीं रहेगा।

– किसके अनन्त जीवन की बात कही जाती है?

महाराज – साधक के जीवन की बात है। साधक चिन्तन करेगा – "मैं ब्रह्म हूँ" "मैं ब्रह्म हूँ" "मैं ब्रह्म हूँ" कहते-कहते अहंकार विनष्ट हो जायेगा, तब केवल ब्रह्म ही रहेगा।

"यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति।
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम।।

(कठोपनिषद, २/१/१५)

जैसे एक शुद्ध जल-बिन्दु शुद्ध जल में पड़ने से शुद्ध जलराशि ही हो जाती है, उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं रहता, वैसे ही जो विज्ञानी ब्रह्मज्ञ हैं, उनका अहंरूपी घड़ा फूटने के बाद वह ब्रह्मज्ञ होगा। ब्रह्मज्ञ नहीं, ब्रह्म के स्वरूप में प्रतिष्ठित होगा। कौन प्रतिष्ठित होगा? ब्रह्म प्रतिष्ठित होगा। (अविद्या का) आरोप चला जायेगा। इसीलिए शंकराचार्य के भाष्य में हैं – किसकी अविद्या? उत्तर – जिसकी अविद्या है उसकी। मैं भी तो अविद्या से भोग रहा हूँ। तब और प्रश्न क्यों कर रहा हूँ? बिल्कुल तर्कसंगत बात है। अविद्या से अहंकार की उत्पत्ति होती है, अविद्या के नाश होने से अहंकार कहाँ जायेगा? अविद्या की निवृत्ति के साथ-साथ अहंकार की भी नृिवत्ति हो जायेगी। ब्रह्मवादी कहते हैं – जब सभी आरोप दूर हो गये, स्व-आरोप तो रह गया। तब और क्या वर्णन करूँगा। तब वर्णन करते हैं – अशब्दम् अस्पर्शम्, अरूपम् अव्ययम्। शून्य और बह्म में बहुत भेद नहीं है, एक हैं। बौद्धों का शून्य अर्थात् जगत का शून्य नहीं है, जिसके लिये जगत का आरोप होता है, उस शून्य की निवृत्ति है।

– इतने कठिन, जटिल दर्शन के द्वारा भी बुद्ध कैसे इतने लोकप्रिय हुए?

महाराज – बुद्ध ने किसी तर्क शास्त्र की रचना नहीं की। उन्होंने कहा है – मनुष्य के वासना की निवृत्ति। बिल्कुल सही बात है। उन्होंने कहा है – एक व्यक्ति के शरीर में तीर लगा है। उस व्यक्ति से लोग पूछ रहे हैं – 'बाण किधर से आया? बाण का फलक कितना बड़ा था इत्यादि। वह व्यक्ति कहता है – पहले बाण मेरे शरीर से निकालो, उसके बाद प्रश्न पूछो। बाण कहाँ से आया, कैसे आया। इतने विचार की क्या आवश्यकता है? सीधी-सी बात है, वासना की निवृत्ति। मुझसे सभी लोग आकर यहाँ कहते हैं – मुझे बड़ी अशान्ति है, यह अशान्ति कैसे जायेगी? मैं कहता हूँ एक उपाय है। वे लोग सुनकर बड़ी उत्सुकता से पूछते हैं, क्या उपाय है? मैं कहता हूँ – वासना की निवृत्ति। कोई कहता है – मेरी कोई वासना नहीं है। मैं कहता हूँ, तब तुम्हें कोई दुख भी नहीं है। अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति के लिए मन में आकांक्षा रहने को वासना कहते हैं। वासना नहीं है, तो दुख कहाँ से आएगा? कोई कहता है, मैं संसार नहीं चाहता। मैं पूछता हूँ, तब क्या चाहते हो? तब समझ में आता है – संसार रहेगा, किन्तु संसार का दुख-कष्ट नहीं रहेगा, यही चाहता है। पति-पुत्र-पुत्री सभी यहाँ अमर होकर रहेंगे, यही चाहता है। आकाशकुसुम के समान कल्पना करता है। इसके पार जाना होगा। **(क्रमश:)**

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

हमारे देश में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर एक ऐसे महापुरुष हुए हैं, जिनका जीवन बचपन से लेकर अन्त तक सभी व्यक्तियों के लिए प्रेरणादायी रहा है। इनकी कहानियाँ आज भी विद्यार्थीगण बड़े उत्साह से पढ़ते हैं। यहाँ तक कि विद्यार्थियों की पाठ्य-पुस्तकों में भी उनके जीवन के अनेक प्रसंगों का समावेश है।

ईश्वरचन्द्र जी का जन्म बंगाल में मेदिनीपुर जिले के वीरसिंह नामक गाँव में १८२० में हुआ था। इनके माता-पिता बहुत ही गरीब थे। बालक ईश्वरचन्द्र की माता बड़ी धार्मिक और दयालु थीं। वे ईश्वरचन्द्र को रामायण, महाभारत, शिवाजी आदि की कहानियाँ सुनाया करतीं। ईश्वरचन्द्र भी अपनी माँ का बहुत आदर करते थे।

पाँच वर्ष की उम्र में ईश्वरचन्द्र ने अपने गाँव की पाठशाला में प्रवेश किया। वह बचपन से ही बहुत बुद्धिमान और परिश्रमी था। अपनी कक्षा में वह हमेशा प्रथम आता था। स्कूल के प्रधानाध्यापक ने ईश्वरचन्द्र के विषय में लिखा था, 'इस स्कूल के इतिहास में आज तक इतना सच्चरित्र, सुशील, बुद्धिमान और मेहनती विद्यार्थी नहीं आया, जितना ईश्वरचन्द्र है। ऐसे विद्यार्थी से हमारी पाठशाला गौरवान्वित हुई है।'

ईश्वरचन्द्र अपने सहपाठी मित्रों से बहुत सहानुभूति रखता था। कक्षा में जो भी पढ़ने में कमजोर विद्यार्थी होता, वह स्वयं उसके पास जाता और उसकी पढ़ाई में सहायता करता।

उसके पिता थोड़े कठोर स्वभाव के थे। भविष्य में वह अपने पिता के बारे में कहता, 'मेरे पिता मेरी पढ़ाई-लिखाई के बारे में बहुत कठोर थे। वे मुझसे बातों में जितना अधिक प्रेम करते, पढ़ाई में उतने ही कड़े हो जाते थे। नींद आने पर वे मेरी चोटी रस्सी से बाँधकर खूटी से अटका देते, ताकि मैं सो न जाऊँ। उस समय मेरे पिताजी की कठोरता मुझे खटकती थी, किन्तु आज मैं जो कुछ भी बन सका, यह उनकी कठोरता का ही फल है।'

पाठशाला की शिक्षा समाप्त होने के बाद ईश्वरचन्द्र के पिता उसे और भी आगे पढ़ाना चाहते थे। इनके घर की अवस्था इतनी अच्छी नहीं थी कि ईश्वरचन्द्र को आगे पढ़ाया जा सके। किन्तु उसके पिता ने साहस किया। वे ईश्वरचन्द्र को कलकत्ता ले आए। उनके पास पैसे नहीं थे। कुछ दिन उन्होंने भूखे ही गुजारे। बड़े कष्ट से उन्हें दो रुपये महीने की नौकरी मिली। उसी से ईश्वरचन्द्र की पढ़ाई शुरू हुई। इसके बाद वह संस्कृत कॉलेज का विद्यार्थी भी बन गया।

गरीबी के कारण ईश्वरचन्द्र पढ़ाई के साथ-साथ नौकरी भी करने लगे और उसमें से कुछ पैसे घर पर अपनी माँ को भी भेजते रहे। उनके रहन-सहन में बहुत सादगी थी। सड़क पर लगी नगरपालिका की लालटेन की रोशनी में पढ़ते थे, इसलिए उनका तेल का खर्च भी बच जाता था। भोजन वे स्वयं बनाते थे। बर्तन भी स्वयं साफ कर लेते। कक्षा में गरीब और कमजोर विद्यार्थियों को वे अपने कमरे में रखकर उन्हें स्वयं पढ़ाते।

संस्कृत कॉलेज की परीक्षा में वे प्रथम क्रमांक में पास हुए। कॉलेज के अंग्रेज प्रधानाध्यापक ईश्वरचन्द्र से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने कॉलेज की समिति में प्रस्ताव रखा कि ईश्वरचन्द्र का कॉलेज की ओर से सम्मान किया जाए। हजारों विद्यार्थियों और अध्यापकों के बीच उन्हें 'विद्यासागर' नाम की उपाधि दी गई। इस तरह २१ वर्ष की उम्र में ही वे विद्यासागर बन गए। आगे चलकर उनका यही नाम प्रसिद्ध हुआ।

वे जिस कॉलेज के विद्यार्थी थे, उसीके प्रधानाध्यापक हुए। वहाँ उन्होंने देखा कि अध्यापक और विद्यार्थियों में अनुशासन का अभाव हो गया है। अध्यापक समय पर

शेष भाग पृ. ३२५ पर

स्वामी विवेकानन्द की कथाएँ और दृष्टान्त

(स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में दृष्टान्त आदि के रूप में बहुत-सी कहानियों तथा दृष्टान्तों का वर्णन किया है, जो १० खण्डों में प्रकाशित 'विवेकानन्द साहित्य' तथा अन्य ग्रन्थों में प्रकाशित हुए हैं। उन्हीं का हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है, जिसका संकलन स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

७५. संयोगिता और पद्मिनी की कथा

एक अत्यन्त प्राचीन नगर कन्नौज एक राजपूत राजा की राजधानी थी । उसकी (संयोगिता नाम की) एक पुत्री थी । उसने (अजमेर तथा दिल्ली के राजा) पृथ्वीराज की वीरता तथा पराक्रम के विषय में सुन रखा था और वह उनके साथ प्रेम भी करने लगी थी । इधर उसके पिता ने एक राजसूय यज्ञ किया और उसमें भाग लेने को देश के सभी राजाओं को निमंत्रित किया । उस यज्ञ में सभी राजाओं को उसके लिये छोटी-मोटी सेवाएँ देनी थीं, क्योंकि वह सबसे बड़ा राजा था; और उसने घोषणा कर दी थी कि यज्ञ के अवसर पर उसकी पुत्री का स्वयंवर के द्वारा विवाह भी होगा ।

परन्तु उनकी पुत्री पहले से ही पृथ्वीराज से प्रेम करती थी । वे बड़े ही प्रतापी थे और उसके पिता की अधीनता माननेवाले नहीं थे, अत: उन्होंने इस निमंत्रण को अस्वीकार कर दिया । कन्नौज के राजा ने पृथ्वीराज की एक सोने की मूर्ति बनवायी और उसे द्वार के पास रखवा दिया । उसने घोषणा की कि पृथ्वीराज के लिये चौकीदार का काम निर्धारित किया गया है ।

इस पूरी घटना की अन्तिम परिणति यह हुई कि पृथ्वीराज एक सच्चे वीर के रूप में वहाँ आये और कन्या को उठाकर उसे अपने घोड़े पर बैठा लिया । इसके बाद दोनों भाग निकले ।

जब उसके पिता को यह सूचना मिली, तो उसने अपनी सेना के साथ उन लोगों का पीछा किया और दोनों की सेनाओं के बीच एक भयानक युद्ध हुआ, जिसमें दोनों पक्षों के अधिकांश सैनिक मारे गये । और (इससे राजपूत इतने दुर्बल हो गये कि) भारत में मुसलमानों का साम्राज्य आरम्भ हो गया ।

जब उत्तरी भारत में मुसलमानी सल्तनत की स्थापना हो रही थी, उन्हीं दिनों चित्तौड़ की रानी (महारानी पद्मिनी) के सौन्दर्य की प्रसिद्धि फैलने लगी । उसके सौन्दर्य की सूचना (दिल्ली के) सुलतान तक भी पहुँची । उसने एक पत्र लिखा कि रानी को उसके हरम में भेज दिया जाय । इसके फलस्वरूप चित्तौड़ के राजा और सुलतान के बीच एक बड़ा ही भयंकर युद्ध हुआ । आखिरकार मुसलमानों ने चित्तौड़ पर विजय पा ली । जब राजपूतों ने देखा कि वे अब अपनी रक्षा करने में असमर्थ हैं, तो सारे राजपूत पुरुषों ने तलवार उठायी और उन लोगों को मारते हुए स्वयं बलिदान हो गये । उनकी स्त्रियों ने भी अग्नि में प्रवेश करके आत्मदाह कर लिया ।

सभी पुरुष योद्धाओं की मृत्यु के बाद जब विजेता (सुल्तान) ने नगर में प्रवेश किया, तो उसने देखा कि मार्ग पर चारों ओर आग की भयंकर लपटें उठ रही हैं । उसने देखा कि रानी के नेतृत्व में अनेक महिलाएँ उन (चिताओं) की प्रदक्षिणा कर रही हैं । वे लोग जब निकट पहुँचकर रानी को आग में कूदने से मना करने लगे, तो वे बोलीं, "राजपूत नारी तुम्हारे साथ ऐसा ही व्यवहार करती है," ऐसा कहकर वे लपटों में कूद पड़ीं ।

कहते हैं कि मुसलमानों के हाथ से अपना सम्मान बचाने के लिये उन लपटों में ७४,५०० महिलाओं ने आत्मबलिदान किया था । आज भी जब हम कोई पत्र लिखते हैं, तो उसे बन्द करने के बाद उस पर "७४-१/२" लिख देते हैं । इसका तात्पर्य यह है कि यदि कोई इस पत्र को खोलने का साहस करता है, तो उसे ७४,५०० महिलाओं को मारने का पाप लगेगा । [CW, 9:198-199]

७६. हम रेशम के कीड़ों जैसे हैं

हम लोग रेशम के कीड़ों के समान हैं । हम अपने भीतर से ही पदार्थ निकालकर एक कोआ बनाते हैं और क्रमश: उसी के भीतर कैद हो जाते हैं । परन्तु यह हमेशा के लिये नहीं होता । हम उस कोए के भीतर ही आध्यात्मिक उपलब्धि कर सकते हैं और (उसे काटकर) एक तितली के समान मुक्त होकर बाहर आ सकते हैं । (वि.सा. ८/६१)

सेवानिवृत्त जीवन कैसे बिताएँ? (२)

स्वामी आत्मानन्द

एक तो काम हम अपने लिए करते हैं, भले ही वह सरकारी नौकरी हो, कारखाने की नौकरी हो या अन्य कोई भी। हम इस नौकरी में अपनी पूरी शक्ति लगा देते हैं। परन्तु भीतर-ही-भीतर यह भाव बना रहता है कि मैं अपने लिए ही कर रहा हूँ। आप पूरी शक्ति, ईमानदारी, निष्ठा, लगन से संस्था को बढ़ाने की चेष्टा करेंगे, तो आपके जीवन में एक सन्तुष्टि का भाव रहेगा कि मैंने पूरी योग्यता के साथ इस संस्था में काम किया है। यह उसका एक पक्ष है। पर इस पक्ष के साथ मन में यह भी रहता है कि मैंने यह केवल अपने परिवार के लिए ही तो किया। अपने लिए ही तो पैसा कमाया। मैंने समाज को भला क्या दिया है? यदि दूसरा आकर हमें समझाने की कोशिश करे – अरे सुनो ! संस्था में तुमने कितना काम किया, वह तो एक प्रकार से राष्ट्र की ही सेवा है। तुमने इतना उत्पादन किया, कई बार तुमने उत्पादन का रिकार्ड्स भी बनाया। तुम इतने हतोत्साह क्यों होते हो? वह भले ही हमें दिलासा देने की चेष्टा करे और यह दिलासा यथार्थ भी हो, किन्तु मेरे मन में कहीं पर एक कसक बनी रहती है, यह भावना आती है – मैं केवल अपने परिवार के लिए ही तो काम आया हूँ, समाज के काम तो नहीं आया हूँ। मैं केवल अपने स्वार्थ के लिए ही तो जीवित रहा हूँ। किन्तु यदि वह व्यक्ति कहीं नि:स्वार्थ भाव से सेवाकार्य में लग जाए, तो उसे शक्तिशाली बनने में अधिक समय नहीं लगेगा। नि:स्वार्थ भाव से कर्म करने में इतनी शक्ति भरी रहती है। जब हम सेवा करते हैं, तो हमें लगता है कि हमें वह ऊर्जा प्राप्त होती रहती है। सेवानिवृत्ति के बाद के समय का उपयोग करने का यह एक पक्ष है। मैं चाहूँगा कि अवकाश प्राप्त करते समय आप इसका अवश्य ध्यान रखें।

कहीं बाध्यतायें भी होती हैं। जब हम सेवानिवृत्त होते हैं, तो आर्थिक अभाव हो जाता है। हम दूसरे कहीं से संसाधन जुटाना चाहते हैं। पारिवारिक दायित्व बना रहता है, जिन्हें हम सेवानिवृत्ति के बाद पूरा नहीं कर पाते हैं। हम उन दायित्वों को निभाने की चेष्टा करते हैं। कहीं बाहर अपने मनोनुकूल काम मिलता है, तो हम उसे करके अर्थोपार्जन करने की चेष्टा करते हैं तथा अपने अभाव को मिटाने का प्रयास करते हैं। यह एक पक्ष है।

यदि इसके साथ दूसरा पक्ष जोड़ दें। मनुष्य केवल अर्थ ही नहीं चाहता है। वह जीवन के प्रयोजन की सिद्धि भी चाहता है, संतोष चाहता है, मन में तुष्टि चाहता है। इसके लिए आपको जो भी संस्था अच्छी लगे, उसके साथ जुड़ जाइए । वहाँ जो आप निःस्वार्थ सेवा करेंगे, उससे आपको सन्तुष्टि मिलेगी। तब व्यक्ति को लगता है, वह केवल अपने लिए ही नहीं, बल्कि दूसरों के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो रहा है। ऐसी संतुष्टि तो तभी आ सकती है, जब हम 'वानप्रस्थ' अवस्था में हों।

ऋषि-मुनियों ने बहुत सोच-विचार कर मानव-जीवन को चार आश्रमों में विभाजित किया था। यह विभाजन मनमानी, नियमरहित नहीं था। ऐसा नहीं था कि सौ वर्ष को हमने ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास में पच्चीस-पच्चीस वर्ष करके बराबर विभाजित कर दिया। वेदों में जो विभाजन किया गया है, उसे तीन भागों में विभाजित किया गया है। आश्रम चार माने गये हैं, पर उसका जो विभाजन है वह तीन में ही है। चौबीस वर्ष का प्रथम काल है, जिसे ब्रह्मचर्य आश्रम कहा गया है। यह विद्याभ्यास का काल है। मनुष्य गुरु के पास जाता था और वहाँ चौबीस वर्ष तक रहकर विद्याध्ययन करता था। दूसरा काल है अड़तालीस वर्ष, जिसे गृहस्थाश्रम कहा जाता है। दोनों पूर्ण होते बहत्तर साल के हो गए। तीसरा काल चौवालिस वर्ष का होता है, जिसे वानप्रस्थाश्रम कहते हैं। इस तरह मनुष्य की औसत आयु एक सौ सोलह साल मानी गई। औसत कहने का अर्थ है कि परम आयु मानी गई। "जीवेम शरद: शतम्" – हम सौ वर्ष तक जियें। वृद्ध लोग हमें सौ वर्ष जीने का आशीर्वाद देते थे।

मानो सौ वर्ष का ये जो कार्यक्रम है, इसे हमने आयु-सीमा मानी थी। वेदों में ऐसा विचार था कि सैकड़ा यानि जो आयु का सैकड़ा है उसे एक सौ सोलह वर्ष माना गया। अभी भी गाँवों में जब हम जाते हैं और कोई वस्तु खरीदते हैं, जैसे हमने कहा – 'एक सौ आम दे दो', तो वह पांच कोड़ी (बीस को कोड़ी कहते हैं) आम देगा तथा एक और कोड़ी ऊपर से पुरौनी भी देगा। मानो एक सौ बीस का सैकड़ा माना जा रहा था। जैसे आप रतल कहेंगे, तो रतल का सैकड़ा एक सौ बारह का माना जाता है। जैसे नाम-जप का सैकड़ा एक सौ आठ का माना जाता है। यदि कोई कहे, कि आप नाम-जप सौ बार करें, तो हम सौ बार नहीं करते, बल्कि एक सौ आठ बार करते हैं। इसी तरह मनुष्य की पूर्ण आयु एक सौ सोलह वर्ष की मानी गई। चौबीस वर्ष विद्याध्ययन में, अड़तालिस वर्ष गृहस्थाश्रम में रहे। शेष चौवालिस वर्ष के लिए कहा गया – अब तुम जाओ और इस संसार से धीरे-धीरे अपना लगाव कम करने की चेष्टा करो, वानप्रस्थ जीवन यापन करो। जिसमें क्षमता है संन्यास लेने की, यानि जो अपने भीतर में अनुभव करता है कि मैं पत्नी से विमुख रहकर संन्यासी का जीवन जी सकता हूँ, तो अलग चले जाओ और ध्यान-धारणा में अपना जीवन बिताओ। जीवन का जो लक्ष्य है इसे पाने का चिन्तन करो। क्योंकि वानप्रस्थ आश्रम में पत्नी साथ रह सकती है पर जो संन्यास का आश्रम है उसमें पत्नी साथ नहीं रह सकती। यह बड़ी ही मनोवैज्ञानिक पद्धति थी।

जब यह प्रणाली हमारे सामने रखी गई थी, जब यह शिक्षा हमें प्राप्त हुई कि हमारे जीवन का बँटवारा इस प्रकार से होना चाहिये, तो अचानक कोई आघात नहीं किया गया, बल्कि मानों हमें पहले से ही मनोवैज्ञानिक रूप से तैयार कर दिया गया था। हम इसे सहने के लिए, ऐसा जीवन जीने के लिए तैयार थे। वानप्रस्थ जीवन में ऐसा लगता था कि हमारी सारी जिम्मेदारियाँ पूर्ण हो गई और हम धीरे-धीरे विरक्ति का अभ्यास कर रहे हैं, आसक्ति को काटने की चेष्टा कर रहे हैं। वानप्रस्थ आश्रम में जब मनुष्य जाता था, तो निःस्वार्थ कामों में अपने को लगा देता था। जब वह गृहस्थाश्रम में था, उस समय भी यथाशक्ति अपने को निःस्वार्थ कामों में लगाता ही था, पर वानप्रस्थी होने का मतलब था कि पूरा समय वह निःस्वार्थ कार्यों में दे रहा है, अब अपने लिए किसी प्रकार का प्रयोजन नहीं है, वह स्वार्थनिहित काम में अपना समय नहीं बिता रहा है। ऐसी उस समय की धारणा थी।

मैं यह कहना चाहता था कि सेवानिवृत्ति की जो तैयारी है, यदि हमारे मन में वानप्रस्थी जैसी भावना रही, तो यह हमारे मानसिक आघात को बहुत कुछ कम कर सकती है और धीरे-धीरे समायोजन पैदा कर सकती है। इस समायोजन के बल पर हम अपने जीवन से हताशा को दूर कर सकते हैं।

एक उदाहरण मैंने एडिशनल डाइरेक्टर का दिया था। अब दूसरा उदाहरण मध्य प्रदेश के एक चीफ-इंजिनियर का है। ये महोदय यहीं भोपाल में सेवानिवृत्त हुए। पहले तो उन्होंने सोचा कि सेवानिवृत्ति के बाद कहीं हिमालय में ध्यान करने के लिये चले जाएँ और वहाँ पर हम एकान्तवास करें। मैंने उनसे अनुरोध किया कि एक बार आप नारायणपुर आ करके देख लीजिए। वहाँ पर हमारा एक बहुत बड़ा कर्मस्थल है। आपने एक कर्मठता का जीवन व्यतीत किया है। आप हिमालय में जाना चाहते हैं, हो सकता है कि वहाँ सामंजस्य न हो सके। क्योंकि आदमी जब बहुत कर्मठ होता है, तब बिल्कुल कर्म का अभाव सन्तुलन को बिगाड़ देता है। हमने कहा, "आप नारायणपुर में आ जाइए। यहाँ आपको घोर जंगल मिलेंगे, गुफाएँ मिलेंगी, वहाँ आप ध्यान-धारणा का अभ्यास कर सकते हैं। बाकी समय में यदि आप चाहें, तो सेवाकार्य कर सकते हैं। आप सक्रिय भी रहेंगे और पूर्णता, सन्तुष्टि की अनुभूति भी होगी।" वे सज्जन आज दो साल से नारायणपुर में रहकर काम कर रहे हैं। इन दो वर्षो में उनका विलक्षण योगदान रहा है। यह तो उनका सामाजिक योगदान रहा। किन्तु उन्हें व्यक्तिगत लाभ हुआ, ऐसा लगता है, जैसे उनकी काया पलट हो गई है। पहले उन्हें प्रतीत होता था वे कुछ करने के योग्य नहीं है। वे कहा करते थे कि इस उम्र में मैं क्या सेवाएँ दे सकता हूँ? पर वहाँ उनका काम देखने से ऐसा लगेगा कि चालीस साल का जवान भी चलने में या काम करने में उनकी बराबरी नहीं कर सकता। यही है जीवन की उपयोगिता, जिसकी मैंने पहले चर्चा की थी।

'मैं उपयोगी नहीं हूँ, यह भाव ही मेरे ऊपर वजन का काम करता है और मुझे सतत दबाने की चेष्टा करता है। हम इस भाव से अपने को मुक्त कर सकते हैं। कैसे? आप सोचें कि आप समाज के लिये उपयोगी हैं। उसके

बाद जो काम आपको अच्छा लगे, उससे समाज की सेवा करना प्रारम्भ कर दीजिये। मान लीजिए, आपको पैसों की आवश्यकता है, आप उपार्जन करना चाहते हैं, तो आप अवश्य उपार्जन कीजिए। इसमें कोई हानि नहीं है। किन्तु यदि आप किसी ऐसे निःस्वार्थ कर्म के साथ जुड़ते हैं, तो आप ऊर्जा, शक्ति के भंडार बन जाएँगे। वह आपको सतत् शक्ति देता रहेगा। ऐसा लगेगा कि आप बहुत उपयोगी हैं। यह स्वाभाविक है कि जब कोई आपकी प्रशंसा करता है, ''देखिए भाई ! आप तो बहुत काम करते हैं। युवक क्या आपसे होड़ ले सकेंगे।'' यह सुनने से ही कितनी ऊर्जा आ जाती है, कितना जोश पैदा हो जाता है। मैं अपनी प्रशंसा सुनकर जोश में आ रहा हूँ, ऐसी बात नहीं है। जब मुझे लगता है कि मैं समाज के लिये सचमुच हितकारी बन रहा हूँ, उपयोगी सिद्ध हो रहा हूँ, मैं सब तरह से अपनी सेवायें दे रहा हूँ, जिसे समाज की आवश्यकता है, तो मेरे भीतर शक्ति का फुहारा फूटने लगता है। इस प्रकार सेवा-निवृत्ति की तैयारी के लिए ईशावास्योपनिषद के ये दो बढ़िया सूत्र हैं।

लेकिन बहुत से लोगों को यह बात ठीक नहीं लगती। क्योंकि हमने इस दिशा में अभ्यास कभी नहीं किया है। पहले से हमारी कोई तैयारी नहीं है। कोई साधना नहीं रही है। हमने इस प्रकार से ईश्वर को देखने की चेष्टा नहीं की है। किन्तु आज जो वैज्ञानिक उपलब्धि है, उसके बल पर हम उस सत्ता का चिन्तन अवश्य कर सकते हैं, जो सार्वभौमिक है, जो एक नियामक सत्ता है। आप ऐसी सत्ता की कल्पना जल्दी कर सकते हैं। क्योंकि आपको ऐसी सत्ता की कल्पना है, जो सारे संसार को चला रही है, नियंत्रित कर रही है और जिसमें किसी प्रकार का व्यतिक्रम नहीं है। यदि आज इस नियम में कोई व्यतिक्रम होता तो आज वैज्ञानिक उन नियमों को खोजने में समर्थ नहीं होते।

मैंने पहले कहा था कि जब पहले दिन हम लोगों ने सुना कि मनुष्य चन्द्रमा के धरातल पर उतर गया, तो अमेरिका ने अच्छी तरह उसकी पूर्व तैयारी की थी। कदाचित् आपने वह दृश्य देखा हो। वह बहुत ही मार्मिक दृश्य था। वहाँ पर उन्होंने बताया था कि कैसे आदमी यान से अन्तरिक्ष में जा रहा है। अन्तरिक्ष में जाकर चन्द्रमा के धरातल पर उतरकर यान का दरवाजा खोलकर बाहर निकलता है तथा कैसे चन्द्रमा के धरातल पर चलता है। यह सारा का सारा चित्र जब मनुष्य चन्द्र-तल पर उतरा नहीं था, तभी हमें अमेरिकी टी.वी. पर देखने का अवसर मिला था। यह घोषणा भी की गई थी कि इतने घंटे, इतने मिनट और सेकन्ड में यह व्यक्ति वहाँ जाकर चन्द्रमा के धरातल पर उतरेगा। क्या खूब ! यह मनुष्य कितना शक्तिशाली है !

हमारे यहाँ मनुष्य को ब्रह्म कहा गया है। यह मनुष्य, यह जीव ब्रह्म के समान ही अनन्त शक्तिशाली है। इसका मानो प्रत्यक्षीकरण ही है कि एक व्यक्ति गणना करके अंतरिक्षयान के सम्बन्ध में बता सकता है कि उसे वहाँ जाने में कितना समय लगेगा। जब यथार्थ में उस यान को भेजा गया, तो ठीक उतने घंटे, उतने मिनट तथा उतने सेकन्ड ही उस व्यक्ति को वहाँ उतरने में लगे। यह कैसा अद्भुत चमत्कार है !

नियमों में कोई व्यतिक्रम नहीं है। जिन्हें ईश्वर में आस्था नहीं है, वे ऐसा सोच सकते हैं कि संसार में एक सत्ता विद्यमान है, जो भौतिक है। जिन्हें ईश्वर की आस्था में विश्वास है, उनके लिए पथ कुछ सुलभ और सहज हो जाता है। जिनमें ये संस्कार हैं, वे इस संस्कार को अपनी माँ से प्राप्त करते हैं। **(क्रमशः)**

पृ. ३२१ का शेष भाग

नहीं आते थे। विद्यार्थियों की भी उपस्थिति ठीक नहीं थी। विद्यासागरजी अनुशासन के मामले में बड़े कठोर थे। किन्तु उनका स्वभाव भी बड़ा सुशील था। उनके सामने समस्या यह थी कि जो अध्यापक देरी से कॉलेज में आते थे, उनमें से एक उनके आचार्य रह चुके थे। अन्य अध्यापकों में से भी अनेक तो विद्यासागर जी के ही सहपाठी रह चुके थे।

उन्होंने एक उपाय ढूँढ़ निकाला। वे कॉलेज खुलने के पाँच मिनट पहले ही पहुँच जाते। उसके बाद जो भी अध्यापक देरी से आते, उनसे वे पूछते, 'अरे आप इस समय आ रहे हैं?' किन्तु जब उनके आचार्य आते, तो उनसे वे कुछ न कहते। उनके सामने वे दूसरे अध्यापकों को ताना मारते। आचार्य को भी बात समझ में आ गई। वे नियमित समय पर आने लगे। ○○○

प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका

श्रीशंकराचार्य

साधुबलं किं दैवं कः साधुः सर्वदा तुष्टः।
दैवं किं यत्सुकृतं कः सुकृती श्लाघ्यते च यः सद्भिः।।४८।।

प्र. साधु (सज्जन) का बल क्या है?

उ. दैव ही साधु का बल है।

प्र. साधु कौन है?

उ. जो सर्वदा सन्तुष्ट रहता है, वह साधु है।

प्र. दैव क्या है?

उ. (पूर्वजन्म अथवा इस जन्म में किया हुआ) पुण्य ही दैव है।

प्र. पुण्यशाली कौन है?

उ. जो व्यक्ति सत्पुरुषों से प्रशंसित है, वह पुण्यात्मा है।

गृहमेधिनश्च मित्रं किं भार्या को गृही च यो यजते।
को यज्ञो यः श्रुत्या विहितः श्रेयस्करो नृणाम्।।४९।।

प्र. गृहस्थ का मित्र कौन है?

उ. धर्मपत्नी।

प्र. गृहस्थ किसे कहते हैं?

उ. जो यज्ञ करता है, वह गृहस्थ है।

प्र. यज्ञ किसे कहते हैं?

उ. वेदविहित कर्म, जिससे मनुष्यों का कल्याण हो, वह यज्ञ है।

कस्य क्रिया हि सफला यः पुनराचारवान् शिष्टः।
कः शिष्टो यो वेदप्रमाणवान् को हतः क्रियाभ्रष्टः।।५०।।

प्र. किसकी क्रियाएँ सफल होती हैं?

उ. जो सदाचारी और शिष्ट है, उसकी क्रियाएँ सफल होती हैं।

प्र. शिष्ट कौन है?

उ. जो वेद को प्रमाण मानता है अर्थात वेद के उपदेशानुसार आचरण करता है, वह शिष्ट है।

प्र. कौन (जीवित रहते हुए भी) मृत है?

उ. जो (वेदानुसार) कर्म नहीं करता वह मृतप्राय है।

को धन्यः संन्यासी को मान्यः पण्डितः साधुः।
कः सेव्यो यो दाता को दाता योऽर्थितृप्तिमातनुते।।५१।।

प्र. धन्य (भाग्यशाली) कौन है?

उ. संन्यासी।

प्र. सम्माननीय कौन है?

उ. जो विद्वान और सदाचारी है, वह सम्माननीय है।

प्र. कौन सेव्य है?

उ. जो दाता है, वह सेव्य है।

प्र. दाता कौन है?

उ. जो प्रार्थी को सन्तुष्ट करे, वह दाता है।

किं भाग्यं देहवतां आरोग्यं कः फली कृषिकृत्।
कस्य न पापं जपतः कः पूर्णो यः प्रजावान् स्यात्।।५२।।

प्र. शरीरधारियों के लिए भाग्य क्या है?

उ. आरोग्य अथवा स्वस्थ जीवन शरीरधारियों के लिए भाग्यवान वस्तु है।

प्र. कौन फलवान अथवा सफल है?

उ. जो अपने क्षेत्र में कृषि (सुकृत) करता है, वह सफल है।

प्र. किसे पाप नहीं लगता है?

उ. जो भगवान के नाम का जप करता है, उसे पाप स्पर्श नहीं करता।

प्र. पूर्ण कौन है?

उ. जो प्रजा (गुणवान सन्तति) वाला है, वह (लौकिक दृष्टि से पूर्ण) है।

किं दुष्करं नराणां यन्मनसो निग्रहः सततम्।
को ब्रह्मचर्यवान् स्यात् यश्चास्खलितोर्ध्वरेतस्कः।।५३।।

प्र. मनुष्यों के लिए अति कठिन (कार्य) क्या है?

उ. निरन्तर मन को नियन्त्रण में रखना मनुष्यों के लिए सबसे कठिन कार्य है।

प्र. ब्रह्मचारी कौन है?

उ. जिसका वीर्य स्खलित न हो और अपनी शक्ति को उच्च केन्द्रों में धारण कर सके, वही ब्रह्मचारी है।

साधक-जीवन कैसा हो? (१९)

स्वामी सत्यरूपानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

आपने सुना था, साधक का जीवन ईश्वर-केन्द्रित होना चाहिए। वैसे यह बात हम कई बार सुनते हैं, किन्तु एक बार हम निश्चय कर लें कि हमारा जीवन ईश्वर केन्द्रित हो जाए, हमारा सम्पूर्ण व्यक्तित्व ईश्वर-केन्द्रित हो जाए। इस लक्ष्य को थोड़े समय के लिये हम भले ही भूल जाएँ, किन्तु हमारा सम्पूर्ण प्रयत्न साधना-केन्द्रित होना चाहिए। यदि हमारी सम्पूर्ण शक्ति साधना में नहीं लगती है, तो हमें साध्य की उपलब्धि नहीं हो सकती, इसलिए साधक का जीवन साधना-केन्द्रित होना चाहिए, इससे उच्च लक्ष्य की प्राप्ति अवश्य हो जाएगी। जब साधन समीचीन होगा, तभी हमारे जीवन में लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है। जब भी हम कोई साधना करते हैं, तो हमारे मन में लक्ष्य की थोड़ी-बहुत धारणा होनी चाहिए। हम सब आध्यात्मिक साधक हैं और हमारे जीवन का लक्ष्य है – ईश्वरप्राप्ति।

ईश्वरप्राप्ति के सम्बन्ध में हमारी धारणाएँ स्पष्ट नहीं होतीं। लक्ष्य की अस्पष्ट धारणा हमें साधना में तीव्रता से प्रेरित नहीं कर सकती। अत: लक्ष्य की धारणा स्पष्ट होनी चाहिए। आध्यात्मिक लक्ष्य में तीव्रता इसलिए नहीं आ पाती क्योंकि हमारे मन में संसार का आकर्षण अत्यन्त तीव्र और दीर्घस्थायी है। हमें सांसारिक लक्ष्य स्पष्ट दीख पड़ता है तथा उसका सहज ही आभास हो जाता है, इसलिए हम सांसारिक लक्ष्य की साधना की प्राप्ति में लग जाते हैं। आध्यात्मिक लक्ष्य के साथ ऐसा कुछ नहीं होता।

यह बहुत कठिन है, किन्तु दीर्घकाल तक निरन्तर सत्संग करने, उस पर विचार करने और विचार के साथ-साथ निरन्तर साधना करने पर तब कहीं थोड़ी-सी धारणा मन में स्पष्ट होती है कि ईश्वरप्राप्ति क्या है?

जगत जननी माँ सारदा के उपदेशों में यह बात हमको मिलती है। माँ भक्तों से कह रही हैं कि ईश्वरप्राप्ति या भगवान-लाभ होगा, तो क्या तुम्हारे दो सींग निकलेंगे? माँ निर्वासना होने की बात करती थीं। निर्वासना हमारे जीवन का लक्ष्य ईश्वरप्राप्ति में परम सहायक होगा। वर्तमान में हमारे जीवन का लक्ष्य या हमारी साधना का लक्ष्य निर्वासना होना चाहिए। निर्वासना कैसे हो, यदि सरल शब्दों में विचार करना हो, तो हम दासताओं से मुक्त होने का लक्ष्य रखें। आध्यात्मिक साधना का अर्थ ही है, सभी प्रकार की दासताओं से मुक्त होना। स्वामीजी कहते हैं, स्वाधीनता विकास की प्रथम शर्त है।

हमारे जीवन में यह स्वाधीनता कितनी है, इसे हमें देखना पड़ेगा। हमें रेलगाड़ी में लम्बी-लम्बी यात्रायें करनी पड़ती हैं, किन्तु कुछ घटनाएँ ऐसी घटती हैं, जो व्यक्ति की दासता को सूचित करती हैं। वातानुकुलित यान में धूम्रपान करना निषिद्ध है। कुछ यात्री धूम्रपान के आदी होते हैं। गर्मी के दिन में ए.सी में आराम से बैठे हैं। किन्तु जैसी ही धूम्रपान की तलब लगती है, वे ए.सी. डब्बे से निकलकर दरवाजे या शौचालय के पास खड़े होकर धूम्रपान कर रहे हैं, पसीने से तर-बतर हो रहे हैं। इतना पैसा खर्च करके ए.सी. में यात्रा कर रहे। किन्तु धूम्रपान की दासता के कारण शौचालय के पास गर्मी में तर-बतर होते हुए धूम्रपान कर रहे हैं। क्या यह इन्द्रिय की दासता नहीं है?

ऐसी ही हमलोग अपनी ओर देखें, तो पता लग जाएगा कि हमारी कहाँ दासता है। मान लीजिए किसी को ४ बजे चाय पीने की आदत है। वह एक कमरे में बैठ कर पढ़ या लिख रहा है या जप-प्रार्थना आदि कर रहा है। उसकी घड़ी की ओर दृष्टि नहीं है, किन्तु भीतर की घड़ी बता देती है अरे, ४ बजे अब चाय पीना है। इस चाय की तलब ने उसका मन पढ़ाई-लिखाई या जप से हटा दिया, ध्यान का तो प्रश्न ही नहीं है। चाय पीने की दासता ने उस व्यक्ति के जीवन में व्यतिक्रम किया कि नहीं? पढ़ना-जप आदि सब कुछ छूट गया। चाय पीने में दोष नहीं है, चाय की दासता में दोष है।

साधक का आदर्श वर्तमान में जीना तथा समचित्त रहना चाहिए। चित्त की समता उपलब्ध करने में लंबा समय लगता है। हो सकता है जीवन के अन्त तक का समय लग जाए, किन्तु आदर्श रखें। चाय पीने की याद आयी इसमें कोई दोष नहीं, किन्तु साधक में यह शक्ति होनी चाहिए कि वह अपने मन को तत्काल कह सके कि ठीक है चाय नहीं मिली, तो कोई बात नहीं, मैं पढ़ रहा हूँ, उसमें व्यवधान नहीं होगा। इस प्रकार वह दासता से मुक्त हो सकता है।

अभी हमारी साधना प्रारम्भिक अवस्था में है। हमें और

अधिक परिश्रम करना पड़ेगा। हम साधक हैं। जीवन में ईश्वरप्राप्ति तो ईश्वर की कृपा से होगी, केवल साधना से नहीं। साधना केवल हमारी चित्तशुद्धि के लिये है। जैसे सूर्य को सूर्य के प्रकाश से ही देखा जा सकता है, टॉर्च जलाकर नहीं। सूर्य का प्रकाश चारों ओर है। हमने अपने कमरे के खिड़की-दरवाजे में परदे लगा रखे हैं। इसलिए हमारे कमरे में प्रकाश नहीं आ रहा है। साधना उन परदों को हटाना है। परदा हटते ही प्रकाश अपने आप आ जाएगा, क्योंकि सूर्य तो प्रकाशित है ही।

साधना प्रारम्भ कहाँ से होती है? भगवान गीता में कहते हैं – 'तस्मात् त्वम् इन्द्रियाणि आदौ नियम्य' – इसलिए सबसे पहले इन्द्रियों का नियमन करो। हमें सबसे पहले इन्द्रियों को वश में करने का प्रयत्न करना पड़ेगा। इन्द्रियों को वश में करने के शम और दम दो उपाय हैं। उन दोनों उपायों का अवलंबन साथ-साथ करना पड़ेगा। तब साधक का जीवन सधेगा। यदि केवल शम या केवल दम रहे, तो साधना अपूर्ण रह जायेगी।

हम पहले यह जान लें कि हमारे जीवन में साधना प्रारम्भ हुई है या नहीं। इसे हम उपमा से समझें, तो यह एक तिल के ऊपर दूसरा तिल रखकर हिमालय बनाने जैसा है। जिसके मन में यह साहस हो, यह निश्चय हो कि मैं ऐसा अवश्य करूँगा, उसे इस क्षेत्र में आना चाहिए। इसी जन्म में कुछ परिस्थिति-विशेष में विशेष परिवर्तन आ जाएगा, तो ठीक है। प्रभु को जो करवाना होगा, हमसे करवा लेंगे। उनकी कृपा हुई, तो इसी जन्म में कुछ हो जाएगा।

आप हम सब साधक और सत्संगी हैं। आपके मन में साधक जीवन जीने की इच्छा है। इसलिए मैं ऐसा विश्वास करता हूँ कि आप इस बात से सहमत होंगे कि हम तिल-तिल करके एक तिल के ऊपर दूसरा तिल रखकर हिमालय की गौरीशंकर की चोटी बनाना चाहते हैं। आज एक तिल रखा, तो एक तिल तो कम हुआ।

साधक अपने जीवन में अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को नियंत्रित करने का प्रयास करे। आज हम अपने शरीर और मन के वश में हैं। एक शब्द में अपने चित्त के अधीन हैं। चित्त हमारे वश में हो, ऐसा हमें प्रयत्न करना है। चित्त वश में होने से उसमें भोग की कोई इच्छा नहीं रह जायेगी, तो वह स्वयं हमारे हृदय में विराजमान ईश्वर में डूब जायगा। उसे अलग से ईश्वर में लगाना नहीं पड़ेगा। चित्त जब पूर्णत: निर्मल हो जाएगा, तो वह स्वयं प्रभु के चरणों में लीन हो जाएगा। इष्ट की प्राप्ति हो जाएगी, ईश्वर की प्राप्ति हो जाएगी। जीवन धन्य हो जाएगा। **(क्रमश:)**

महापुरुष महाराज का अहैतुक स्नेह

स्वामी शिवानन्द महाराज रामकृष्ण संघ के द्वितीय संघाध्यक्ष थे। साधु-भक्तों के बीच वे महापुरुष महाराज के नाम से जाने जाते थे। दीन-दुखी, निर्धन मनुष्यों के प्रति उनकी अपार संवेदना थी। उनकी सेवा के लिए वे सतत प्रयत्नशील रहते और साधु-भक्तों को भी उनकी सेवा करने की प्रेरणा देते।

बात बेलूड़ मठ की है। महापुरुष महाराज दोपहर को अपने कमरे की चौकी पर भोजन करने बैठे थे। भोजन प्राय: समाप्त हो चुका था। इसी समय खिड़की से उन्होंने देखा कि एक मोची मठ के प्रांगण में आम्रवृक्ष के नीचे बैठकर साधु-ब्रह्मचारियों के जूतों की सिलाई कर रहा है। भोजन समाप्त कर हाथ-मुँह धोकर वे सेवक से बोले, ''ओह! इस दोपहर के समय हम सब ने तो भोजन किया और यह बेचारा बिना खाये यहाँ बैठकर काम कर रहा है! इसको अच्छी तरह फल-मिठाई आदि प्रसाद तो दे आओ। ''

महापुरुष महाराज के कहे अनुसार सेवक ने उस मोची को फल-मिठाई आदि प्रसाद दिया। लौटते समय सेवक देखते हैं कि महापुरुष महाराज मोची को एकटक दृष्टि से देख रहे हैं और उनके हाथ में एक अठन्नी है। मोची ने काम बन्द कर प्रसाद ग्रहण करना शुरू किया। उसे देख महापुरुष महाराज सेवक से बोले, ''ओह! देखते हो, उसे बहुत भूख लगी थी, प्रसाद देने पर उसने तुरन्त खाना शुरू कर दिया।'' इतना कहकर उन्होंने ऊपर से अठन्नी मोची के सामने फेंक दी। अचानक ऊपर से अठन्नी गिरी देखकर मोची ने देखा कि महाराज खड़े हैं। मोची को समझ में आ गया कि उनकी कृपा से उसे प्रसाद और पैसे मिले हैं। वह हाथ जोड़कर महापुरुष महाराज के प्रति अपना आनन्द और कतज्ञता प्रकट करने लगा।

कुछ देर बाद एक संन्यासी जूते की सिलाई के बारे में मोची से कुछ मोल-भाव करने लगे। यह देखकर महापुरुष महाराज दुख व्यक्त करते हुए बाले, ''अरे, यह गरीब व्यक्ति है, इसके साथ इस प्रकार मोल-भाव क्या करना?'' ○○

रामकृष्ण संघ के संन्यासियों का दिव्य जीवन (७)

स्वामी भास्करानन्द

(रामकृष्ण संघ के महान संन्यासियों के जीवन की प्रेरणाप्रद प्रसंगों का सरल, सरस और सारगर्भित प्रस्तुति स्वामी भास्करानन्द जी महाराज, मिनिस्टर-इन-चार्ज, वेदान्त सोसायटी, वाशिंग्टन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Life in Indian Monastries' में किया है। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मठ, नागपुर के ब्रह्मचारी चिदात्मचैतन्य ने किया है। – सं.)

उचित कार्य के लिए दोष लेना भी श्रेष्ठतर

१९५८ ई. में रामकृष्ण संघ में मेरे सम्मिलित होने के कुछ ही महीनों में यह घटना हुई थी। मैं खासी एवं जैन्टीया पर्वतीय प्रदेश पर स्थित शिलाँग आश्रम में था। आश्रम के रसोई घर तथा अतिथियों की सेवा की देखरेख का भार एक संन्यासी महाराज के ऊपर था। ब्रह्मचारी के रूप में मुझे उनका सहायक बनाया गया। वे आश्रम के नियमादि के बारे में बहुत कड़क थे। मै कोई भी कार्य करूँ, चाहे वह रसोईघर हो या अतिथियों की सेवा हो, उनसे पूछकर करूँ – ऐसी वे आशा रखते थे। एक तो मैं आश्रम में नया आया था और इस नियम से अनभिज्ञ था। महाराज की अनुमति लिये बिना ही मैं अपने मनमाने ढंग से निर्णय ले लिया करता था। इससे वे बहुत अप्रसन्न हुए और उन्होंने इसके बारे में मुझे अवगत भी करा दिया। इससे मैंने निश्चय किया कि आश्रम के छोटे-से-छोटे कार्य के लिए भी मैं उनका परामर्श लिया करूँगा।

एक दिन दोपहर में शिलाँग से लगभग चार सौ मील दूर एक शहर से कुछ अतिथि आये। रेल तथा बस से यहाँ आने में उन लोगों को लगभग २४ घण्टे लगे होंगे। स्वाभाविक ही था कि वे लोग थके एवं भूखे थे। ऐसी स्थिति में हम अतिथियों को पहले कुछ जलपान कराते और बाद में अतिथिकक्ष में ले जाते थे। परन्तु मैंने इनमें से एक भी कार्य नहीं किया। रसोईघर तथा अतिथियों के प्रभारी महाराज आश्रम के लिए किराना-सामान खरीदने के लिए बाहर गये हुए थे। अत: मैं महाराज के वापस आने की प्रतीक्षा करने लगा। उस समय स्वामी गहनानन्द जी महाराज (परवर्ती काल में रामकृष्ण मठ-मिशन के संघाध्यक्ष) आश्रम के व्यवस्थापक थे। जब उन्होंने देखा कि मैंने अतिथियों को जलपान करने के लिए कुछ भी नहीं दिया हैं, तो उन्होंने मुझसे पूछा, "तुमने उन लोंगो को जलपान क्यों नहीं कराया?"

स्वामी गहनानन्द

मैंने उत्तर दिया, "महाराज, मैं प्रभारी महाराज के बाजार से वापस आने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। वे पसन्द नहीं करते कि मैं कोई निर्णय स्वयं ले लूँ। बिना अनुमति के काम करने पर वे असन्तुष्ट हो जाते हैं।"

स्वामी गहनानन्द जी महाराज ने कहा, "यह आश्रम भगवान का है। जो भक्त आए हैं, वे भगवान के अतिथि हैं। क्या हमें उनकी सेवा नहीं करनी चाहिए? जाओ और उन्हें जलपान कराओ, भले ही प्रभारी महाराज रुष्ट हो जाएँ। कभी-कभी अच्छा कार्य करने के लिए दोष लेना भी श्रेष्ठतर होता है।"

संन्यासियों के लिए एक महत्त्वपूर्ण शिक्षा

शिलाँग आश्रम में सम्मिलित होने के कुछ दिनों बाद एक बार मेरा पेट खराब हो गया और मैं भोजन करने नहीं गया। आश्रम के व्यवस्थापक स्वामी गहनानन्द जी महाराज ने मुझे भोजनकक्ष में अनुपस्थित देखा। वे मेरे कमरे में आये और मुझसे पूछा, "क्या हुआ? तुम भोजन करने क्यों नहीं गए?"

मैंने उत्तर दिया – "महाराज, मेरा पेट ठीक नहीं है।"

उन्होंने पूछा – "क्या तुमने आश्रम के चिकित्सक को दिखाया?"

मैंने नकारात्मक जवाब दिया और कहा कि इसके लिए चिकित्सक के पास जाने की आवश्यकता नहीं है। एक-दो दिनों में ठीक हो जाऊँगा। तब महाराज ने मेरे शरीर को दिखाते हुए पूछा – "यह किसका शरीर है?"

मैंने कहा - "यह मेरा शरीर है।"

उन्होंने कहा - "हाँ, यह शरीर कभी तुम्हारा था, लेकिन तुम जिस दिन से रामकृष्ण संघ में सम्मिलित हुए, उस दिन से यह शरीर श्रीरामकृष्ण की सम्पत्ति हो गई। अब तुम्हें इसका दुरुपयोग करने या इसकी उपेक्षा करने का कोई भी अधिकार नहीं हैं।"

उनकी इन बातों से मुझे एक नई शिक्षा मिली। तभी

से मैं अपने शरीर का दुरुपयोग और उपेक्षा नहीं करने का प्रयास करता हूँ। लेकिन मैंने यह भी समझा कि मुझे इसकी अधिक शुश्रूषा भी नहीं करनी चाहिए।

यदि आवश्यकता पड़ी तो, किसी श्रेष्ठतर कार्य के लिए उत्सर्ग करने को तत्पर रहना चाहिए। मुझे पूर्ण विश्वास हैं कि यह समर्पण श्रीरामकृष्ण सर्हष स्वीकार करेंगे।

सब कुछ ईश्वर की इच्छा है

जब मैं बेलूड़ मठ में ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र (Training Center) में था, तब यह घटना घटी थी। रविवार को हमारी कोई कक्षा नहीं होती और इसी दिन हम अपने कपड़े-लते साफ करते थे। उस समय प्रशिक्षण भवन के चारों ओर दो-तीन नल थे। उस दिन हममें से कुछ लोग अपने-अपने कपड़े धोने में व्यस्त थे। नल के पास ही प्रशिक्षण केन्द्र का बगीचा था और इसके फूलों का उपयोग विशेष रूप से मुख्य मन्दिर में पूजा के लिए होता था। एक वरिष्ठ संन्यासी स्वामी गोपालानन्द जी महाराज डलिया लेकर प्रतिदिन फूल तोड़ने वहाँ आते थे। उनके कमरे में पूजा हेतु एक छोटा सा स्थान था, जिसे वे इन फूलों से सजाया करते थे। महाराज के इष्ट-देवता बालगोपाल थे। उनके पास धातु-निर्मित बालगोपाल की एक मूर्ति थी, जिसकी वे बहुत प्रेम एवं भक्तिभाव से पूजा करते थे।

बेलूड़ मठ भोजनालय में हम प्रशिक्षण केन्द्र के ब्रह्मचारियों की साधुओं को परोसने की सेवा रहती थी। स्वामी गोपालानन्द जी महाराज भोजनकक्ष में अन्य संन्यासियों के साथ बैठकर भोजन नहीं करते थे। वे अपने साथ एक छोटा टिफिन-कैरियर लाते और उसमें अपना भोजन ले जाते। जब हम संन्यासियों को परोसने लगते, तब वे भोजनकक्ष में आते। किन्तु वे इतने विनम्र थे कि जब तक अन्य सभी संन्यासियों को प्रथम बार भोजन परोस नहीं दिया जाता, तब तक वे प्रतीक्षा करते और हम लोगों को अपने टिफिन कैरियर में भोजन भरने की अनुमति नहीं देते थे। उसके बाद वे भोजन लेकर अपने कक्ष में जाते तथा बालगोपाल को भोग लगाने के बाद ही प्रसाद ग्रहण करते थे।

महाराज बालक जैसे सरल स्वभाव के थे। वे बहुत शान्त तथा शायद ही बात करते थे। वे प्रतिदिन सुबह प्रशिक्षण केन्द्र के बगीचे में आते और चुपचाप कुछ फूल लेकर अपने कमरे में चले जाते। उस दिन रविवार को हम लोग अपने कपड़ों की सफाई कर रहे थे। हम लोग युवा तो थे ही, वाचाल भी थे और कर्म-सिद्धान्त पर आपस में जोर-शोर से चर्चा कर रहे थे। महाराज बगल से ही जा रहे थे। वे कुछ क्षण के लिए रुके और हमलोगों से कहा – "कर्म-सिद्धान्त कुछ भी नहीं है। सब कुछ ईश्वर की इच्छा से होता है।" इतना कहकर वे चुपचाप चले गये।

मैं महाराज की बहुत श्रद्धा करता था। मैंने उनकी बातों पर विचार किया और तब मुझे श्रीरामकृष्ण की जुलाहे की कहानी याद आयी –

"किसी गाँव में एक जुलाहा रहता था। वह बड़ा धर्मात्मा था। सब को उस पर विश्वास था और सब लोग उसे प्रेम भी करते थे। जुलाहा बाजार में कपड़े बेचा करता था। जब ग्राहक दाम पूछते तो वह कहता, 'राम की इच्छा से सूत का दाम हुआ एक रुपया, मेहनत चार आने की, राम की इच्छा से मुनाफा दो आने और कुल कीमत राम की इच्छा से एक रुपया छ: आने।' लोगों का उस पर इतना विश्वास था कि उसी समय वे दाम देकर कपड़ा ले लेते थे। वह जुलाहा बड़ा भक्त था। भोजन के बाद रात में बहुत देर तक वह चण्डी-मण्डप में बैठकर ईश्वर-चिन्तन करता था। उनके नाम और गुणों का कीर्तन भी वहीं करता था। एक दिन बड़ी रात हो गयी, फिर भी उसकी आँख न लगी, वह बैठा हुआ था, कभी-कभी तम्बाकू पीता था। उसी समय उस रास्ते से डाकुओं का एक दल डाका डालने के लिए जा रहा था।

"उनमें कुलियों की कमी थी। उसे देखकर उन्होंने कहा, अरे, हमारे साथ चल। यह कहकर उसका हाथ पकड़ लिया और उसे ले चले। फिर एक घर में उन्होंने डाका डाला। उन्होंने कुछ चीजें जुलाहे पर लाद दीं। तभी पुलिस आ गयी! डाकू तो भाग गये, किन्तु जुलाहा सिर पर गट्ठर लिये हुए पकड़ा गया। उस रात को उसे हवालात में रखा। दूसरे दिन मजिस्ट्रेट साहब के कोर्ट में उसे पेश किया गया। गाँव के लोग मामला सुनकर कोर्ट में उपस्थित हुए। सब लोगों ने कहा, 'हुजूर ! यह आदमी कभी डाका नहीं डाल सकता।' साहब ने तब जुलाहे से पूछा, 'क्यों जी, तुम्हें क्या हुआ है? कहो।'

"जुलाहे ने कहा, 'हुजूर ! राम की इच्छा से मैंने रात को रोटी खायी। इसके बाद राम की इच्छा से मैं चण्डी-मण्डप में बैठा हुआ था, राम की इच्छा से रात बहुत हो गयी। मैं राम

की इच्छा से उनका चिन्तन कर रहा था और उनके भजन गा रहा था। उसी समय राम की इच्छा से डाकुओं का एक दल उस रास्ते से निकला। राम की इच्छा से वे लोग मुझे पकड़ कर घसीट ले गये। राम की इच्छा से उन लोगों ने एक गृहस्थ के घर डाका डाला। राम की इच्छा से मेरे सिर पर गट्ठर लाद दिया। इतने में ही राम की इच्छा से पुलिस आ गयी। राम की इच्छा से मैं पकड़ा गया, तब मुझे राम की इच्छा से हवालात में पुलिस ने बन्द कर रखा। आज सुबह को राम की इच्छा से वह हुजूर के पास ले आयी है।

"उसे धर्मात्मा देखकर साहब ने जुलाहे को छोड़ देने की आज्ञा दी। जुलाहे ने रास्ते में अपने मित्रों से कहा, 'राम की इच्छा से मैं छोड़ दिया गया।"

इस कहानी के द्वारा श्रीरामकृष्ण यह कहना चाहते हैं कि आध्यात्मिक साधना में मन की एक ऐसी अवस्था आती है, जब मन से कर्तापन की भावना सम्पूर्ण रूप से क्षीण हो जाती हैं। उस अवस्था में 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा विचार नहीं आता। उस समय व्यक्ति को यह पूर्ण विश्वास होता है कि एकमात्र ईश्वर ही सभी कार्य कर रहे हैं। वह केवल ईश्वर के हाथ का यन्त्र मात्र है। यह एक उच्च आध्यात्मिक अवस्था है। इस अवस्था में कर्म-सिद्धान्त एक अनुपयोगी सिद्धान्त है और ईश्वर की इच्छा का सिद्धान्त या प्रारब्ध का सिद्धान्त ही केवल व्यावहारिक सिद्धान्त है।

मुझे विश्वास है कि स्वामी गोपालानन्द जी महाराज ने भक्ति द्वारा ऐसी ही अचल आध्यात्मिक अवस्था प्राप्त की थी। **(क्रमशः)**

मन कठिन तपस्या करने के बाद ही शुद्ध होता है। नियमित अभ्यास के बिना कुछ भी नहीं प्राप्त किया जा सकता है। शुद्धता और अशुद्धता मन में ही होती है। मनुष्य पहले अपने मन को दोषी बनाकर फिर दूसरे का दोष देखता है। दूसरे का दोष देखने से उस दूसरे का क्या बिगड़ता है? – अपनी ही हानि होती है। बचपन से ही मेरा यह अभ्यास था कि मैं किसी का दोष नहीं देख सकती थी। यही एक बात मैंने जीवन में नहीं सीखी।

– श्रीमाँ सारदा देवी

विश्व के विवेकानन्द

कमल किशोर 'भावुक'

शान्ति योद्धा भारती सपूत सचरित्र वह,
युवकों के लिए प्रेरणा है, उपहार है।
विश्व को आलोक बाँटने में सुख पाता रहा,
जिसका कृतित्व इस देश का शृंगार है।
मान देना मानवों को भगवान मानकर,
दिव्य दृष्टिकोण वाला जिसका विचार है।
मातृभूमि के नरेन्द्र विश्व के विवेकानन्द,
तरुण तपस्वी को नमन बार बार है।।

हम जनहित जग विचरें

दीनदयाल ओझा

हम जनहित जग विचरें,
धार विवेक ज्योति उर परहित, निज हित सुख बिसरें।
अपनो लाभ, असद् तज पग-पग, उतरें जगत खरें।
दिखे रुग्ण असहाय धरा पर, दे सुख धन उबरें।
कर जगहित नित कार्य सकल सद्, हम भवसिन्धु तरें।
'दीन' सहाय रामकृष्ण नित, काहू से न डरें।

जीवन-पथ पर इसी तरह बढ़े चलो

बाबूलाल परमार

जीवनपथ पर इसी तरह बढ़े चलो।
कभी अमृत, कभी विष भी पिए चलो।।
कभी दुख, कभी सुख का सिलसिला रहा।
इस सिलसिले में सिलसिला सिए चलो।।
कभी उठे, कभी गिरे, कभी गिरे पड़े रहे।
फिर से सँभल कर लक्ष्य-पथ बढ़े चलो।।
लाभ-हानि, सुख-दुख छोड़ कर मम बन्धु,
इस उठा-पटक से श्रेष्ठ शिक्षा लिए चलो।।

भारत की ऋषि परम्परा (७)

स्वामी सत्यमयानन्द

(भारत वर्ष के प्राचीन ऋषियों का सरल, सरस और सारगर्भित विवरण स्वामी सत्यमयानन्द जी महाराज, सचिव रामकृष्ण मिशन, कानपुर ने अपनी पुस्तक 'Ancient Sages' में किया है। विवेक ज्योति के पाठकों हेतु इसका हिन्दी अनुवाद दिया जा रहा है। – सं.)

महर्षि ऋभु

महर्षि ऋभु सनकादि कुमारों की तरह ब्रह्माजी के मानस-पुत्र थे। त्याग और अध्यात्म-ज्ञान के प्रति उनकी बचपन से अभिरुचि थी। उनका मन शुद्ध और पवित्र था और वे सहज ही संसार-त्याग अर्थात् निवृत्ति पथ की ओर आकृष्ट हुए। वेद में प्रतिपादित सर्वोच्च ब्रह्मज्ञान को परम्परा पूर्वक सीखने के लिए वे अपने ज्येष्ठ भ्राता सनत्कुमारजी के पास गए। सनत्कुमार ने प्रसन्नता से उन्हें वेदान्त के सूक्ष्म ज्ञान की शिक्षा दी। वे ब्रह्मज्ञान के पूर्ण अधिकारी थे। शीघ्र ही उन्हें अद्वैत ज्ञान की प्राप्ति हुई और उसमें प्रतिष्ठित हुए।

महर्षि ऋभु का वर्णन धार्मिक ग्रन्थों के प्राचीन वृत्तान्तों में से एक है। ब्रह्मज्ञान में प्रतिष्ठित व्यक्ति कैसे जीवन यापन करता है, इसकी शिक्षा हमें महर्षि ऋभु के जीवन से मिलती है। उनके जीवन में घटनाओं का अधिक विवरण प्राप्त नहीं है, इसलिये उनके बारे में लोगों को विशेष जानकारी नहीं मिलती। महर्षि ऋभु जनमानस से दूर एकान्त में आत्मानन्द में मग्न रहते थे।

विष्णु-पुराण में ऋषि जड़भरत राजा रहुगण को अद्वैत वेदान्त के सर्वोच्च ज्ञान का उपदेश देते समय महर्षि ऋभु की कथा का वर्णन करते हैं। उसमें वे महर्षि ऋभु का परिचय एक ब्रह्मज्ञ ऋषि के रूप में करते हैं। ऋषि जड़भरत महर्षि पुलस्त्य के पुत्र निदाघ का वर्णन करते हैं। निदाघ महर्षि ऋभु के शिष्य थे। महर्षि ऋभु ने उन्हें अद्वैत वेदान्त की शिक्षा दी। यद्यपि निदाघ द्वैत ज्ञान में प्रतिष्ठित थे, किन्तु वे महर्षि ऋभु के अद्वैत ज्ञान के उपदेशों को आत्मसात् नहीं कर सके। इसके काफी समय बाद महर्षि ऋभु ने निदाघ से दो बार भेंट की। तभी निदाघ ने उनके उपदेशों को स्वीकार किया और अद्वैत वेदान्ती बन गए।

महर्षि ऋभु के निदाघ के प्रति उपदेश संक्षेप में इस प्रकार हैं, "जब पृथ्वी तत्त्व सूख जाता है, तब क्षुधा का अनुभव होता है, जब जल तत्त्व सूख जाता है, तब लोगों को प्यास लगती है। ये सभी केवल जड़ शरीर के धर्म हैं। इसी तरह सन्तोष और सुख मन के धर्म हैं। मैं कहाँ जा रहा हूँ, कहाँ से आ रहा हूँ अथवा कहाँ निवास करता हूँ – ये सब प्रश्न व्यर्थ हैं। आत्मा सर्वव्याप्त और इन्द्रियातीत है, उसका कहीं आवागमन नहीं है। तुम अपने में और बाहरी जगत में जो कुछ देख रहे हो, वह वास्तविक सत्य नहीं है।' **(क्रमशः)**

ढीला-ढाला भाव श्रीरामकृष्ण देव-स्वामी विवेकानन्द को पसन्द नहीं था । वे डकैत जैसी भक्ति की बात कहते थे । ऐसा आत्मविश्वास जगाने को कहते थे कि, "मैं मनुष्य हूँ, मैं सब कुछ कर सकता हूँ ।" भगवत्प्राप्ति तथा देश-जनता के कार्य के लिए निःस्वार्थता, एकता, निरभिमानता तथा उद्यमशीलता की आवश्यकता है । श्रीरामकृष्ण देव का जीवन ही देखो न, वे जब जिस भी साधना में व्रती हुए हैं, किस उद्यम, एकाग्रता तथा अध्यवसाय के साथ उसमें डूब गए हैं । वे कितने निरभिमान थे !

– स्वामी प्रेमानन्द (श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य)

विद्यार्थियों के लिए गीता

(स्वामी विवेकानन्द की वाणी के परिप्रेक्ष्य में भगवद्‌गीता का अध्ययन)

स्वामी आत्मश्रद्धानन्द

सम्पादक, वेदान्त केसरी, रामकृष्ण मठ, चेन्नई

(हिन्दी अनुवाद-संकलन - ब्रह्मचारी चिदात्मचैतन्य)

(गतांक का शेषांश)

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप।।२.३।।

हे अर्जुन ! तुम कायर मत बनो ! यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है। हे शत्रुतापन ! हृदय की इस तुच्छ दुर्बलता को छोड़ उठकर खड़े हो जाओ !

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – यदि कोई यह श्लोक पढ़ता है, तो उसे सम्पूर्ण गीता-पाठ का लाभ होता है, क्योंकि इस एक श्लोक में पूरी गीता का संदेश निहित है। यह जानकर उठो और युद्ध करो। एक पग भी पीछे न रखो, यही भाव है...जो भी आये, उससे संग्राम करो। आकाश नक्षत्र भले ही हट जायँ। सारा संसार हमारे विरुद्ध क्यों न खड़ा हो जाय। मृत्यु का अर्थ केवल वस्त्रों का परिवर्तन है। उससे क्या? अत: लड़ो। कायर होकर तुम कुछ भी लाभ नहीं उठाते।...एक पग पीछे हटकर तुम किसी भी दुर्भाग्य को टाल नहीं सकते। (वि.सा. ७.२९६, ३२०)

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्।।८.७।।

इसलिए हमेशा मेरा स्मरण करो और युद्ध करो। मुझमें मन और बुद्धि को अर्पित करके तुम निश्चय ही मुझे ही प्राप्त करोगे।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – जिन लोगों में सत्य, पवित्रता और नि:स्वार्थपरता विद्यमान हैं, उन्हें स्वर्ग, मर्त्य एवं पाताल की कोई भी शक्ति कोई क्षति नहीं पहुँचा सकती। इन गुणों के रहने पर, चाहे समस्त विश्व ही किसी व्यक्ति के विरुद्ध क्यों न हो जाय, वह अकेला ही उसका सामना कर सकता है। (वि.सा. ९.२४८)

३.
कर्म करने की कुशलता

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः।। ४.१७।।

शास्त्रविहित कर्मों को भी जानना चाहिए। निषिद्ध कर्म को भी ज्ञात करना चाहिए। अकर्म, कर्मत्याग को समझना चाहिए। क्योंकि कर्मों की गति अत्यन्त गहन, कठिन है।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – मन की सारी बहिर्मुखी ऊर्जा किसी स्वार्थपूर्ण उद्देश्य की ओर दौड़ती रहने से छिन्न-भिन्न होकर बिखर जाती है। वह तुम्हारे पास पुनः शक्ति लौटाकर नहीं लाती। परन्तु यदि उसका संयम किया जाय, तो उससे शक्ति की वृद्धि होती है। (वि.सा. २.९)

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।।३.३५।।

सुन्दर रूप से अनुष्ठित परधर्म की अपेक्षा गुणरहित होने पर भी निजधर्म श्रेष्ठतर है, अपने (वर्णाश्रम के) धर्म में मृत्यु भी कल्याणकारी है, दूसरों का धर्म भययुक्त या हानिकर है।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – यदि तुम सचमुच किसी मनुष्य के चरित्र को जाँचना चाहते हो, तो उसके बड़े कार्यों से उसकी जाँच मत करो। हर एक मूर्ख किसी विशेष अवसर पर वीर बन सकता है। मनुष्य के अत्यन्त साधारण कार्यों से जाँच करो, उन्हीं बातों से तुम्हें एक महान पुरुष के वास्तविक चरित्र का पता लग सकता है। (वि.सा. २.५)

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।२.४७।।

कर्म में ही तुम्हारा अधिकार है, कर्मफल में कभी नहीं। क्योंकि वह तुम्हारे अधिकार से बाहर है। तुम कर्मफल की आशा से कर्म में प्रवृत्त मत होओ, फिर कर्मत्याग में भी तुम्हारी प्रवृत्ति न हो अर्थात् अपना कर्तव्य-कर्म करते चलो।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – अपने जीवन में मैंने

जो श्रेष्ठतम पाठ पढ़े हैं, उनमें एक यह है कि किसी भी कार्य के साधनों के विषय में उतना ही सावधान रहना चाहिए, जितना कि उसके साध्य के विषय में।...और मेरा यह मत है कि सब प्रकार की सफलताओं की कुंजी इसी तत्त्व में है – साधनों की ओर भी उतना ही ध्यान देना आवश्यक है, जितना साध्य की ओर। (वि.सा. ९.१)

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।

सिद्ध्यसिद्ध्यो समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।२.४८।।

हे धनंजय ! दृढ़ रूप से योग में स्थित होकर आसक्ति को त्याग कर सिद्धि और असिद्धि में समान भाव रखते हुए कर्म करो। इस प्रकार से समभावयुक्त बुद्धि को योग कहते हैं।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – जो ठंडे मस्तिष्कवाला और शान्त है, जो उत्तम ढंग से विचार करके कार्य करता है, जिसके स्नायु सहज ही उत्तेजित नहीं हो उठते तथा जो अत्यन्त प्रेम और सहानुभूतिसम्पन्न है, केवल वही व्यक्ति संसार में महान कार्य कर सकता है और इस तरह उससे अपना भी कल्याण कर सकता है। (वि.सा. ३.५४)

४. सकारात्मक सोच

अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।

दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।। १६.१।।

भय-रहित भाव, चित्त की विशुद्धि, ज्ञानयोग में ऐकान्तिक निष्ठा, दान, बाहरी इन्द्रियों का संयम और श्रौत तथा स्मार्त यज्ञ, वेदादि शास्त्रों का पाठ, ब्रह्मयज्ञ, तपस्या, निष्कपटता।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – मेरा आदर्श अवश्य ही थोड़े शब्दों में कहा जा सकता है, और वह है – मनुष्य-जाति को उसके दिव्य स्वरूप का उपदेश देना, तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसे अभिव्यक्त करने का उपाय बताना। (वि.सा. ४.४०७)

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।

दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्।।१६.२।।

परपीड़ा-वर्जन, जीव-हितकर वाक्य, क्रोधाभाव, प्राप्त वस्तु या कामना-वासना का त्याग, चित्त की शान्ति, परनिन्दा-वर्जन, प्राणियों के प्रति दया, लोभशून्यता, मृदुता, कुकार्यो में लोकलज्जा, चपलता का अभाव।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – स्त्री-पुरुष, बालक-बालिका, जिस समय दैहिक, मानसिक अथवा आध्यात्मिक शिक्षा पाते हैं, उस समय मैं उनसे यही एक प्रश्न करता हूँ –"क्या तुम्हें इससे बल प्राप्त होता है?" क्योंकि जानता हूँ, एकमात्र सत्य ही बलप्रदान करता है। मैं जानता हूँ एकमात्र सत्य ही प्राणप्रद है। सत्य की ओर गये बिना हम अन्य किसी भी उपाय से वीर्यवान नहीं हो सकते, और वीर्यवान हुए बिना हम सत्य के समीप नहीं पहुँच सकते। (वि.सा. २.१८८-१८९)

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।

भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत।।१६.३।।

हे अर्जुन ! तेज, क्षमा, धीरता, बाहरी और भीतरी पवित्रता, किसी प्राणी से शत्रुभाव न रखना, अपने ऊपर अतिमान न रखना, ये सब दैवी सात्त्विक सम्पत्तियाँ पुण्यवान व्यक्ति में होती हैं।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – विचार ही हमारी कार्य-प्रवृति का नियामक है। मन को सर्वोच्च विचारों से भर लो, दिन-पर-दिन यही सब भाव सुनते रहो, मास-पर-मास इसी का चिन्तन करो। (वि.सा. २.१५६)

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।

मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव।।१६.५।

दैवी सम्पत्ति मुक्ति के लिए है और आसुरी सम्पत्ति संसार-बन्धन का हेतु है। हे अर्जुन, शोक मत करो, क्योंकि दैवी सम्पत्ति के अधिकारी होकर ही तुमने जन्म लिया है।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – अधिकांश व्यक्ति इस जगत् में बिना किसी आदर्श के ही जीवन के इस अन्धकारमय पथ पर भटकते फिरते हैं। जिसका एक निर्दिष्ट आदर्श है, वह यदि एक हजार भूलें करता है, तो यह निश्चित है कि जिसका कोई भी आदर्श नहीं हैं, वह पजास हजार भूलें करेगा। अतएव एक आदर्श रखना अच्छा है। (वि.सा. २.१५६)

५. अशान्ति से मुक्ति

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।

अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते।। ५.१२।।

एक ही कर्म कैसे मुक्ति और बन्धन दोनों का कारण होता है, उसे समझाने के लिए भगवान कहते हैं – परमेश्वर में एकनिष्ठ कर्मयोगी फलाकांक्षा छोड़कर सर्वदु:खनिवृत्ति रूप शान्ति प्राप्त करते हैं, फिर सकाम (बहिर्मुखी) व्यक्ति कामना के वश कर्मफल में आसक्त होकर विशेष दुख पाता है।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – अतएव, अनासक्त होओ, कार्य होते रहने दो – मस्तिष्क के केन्द्र अपना-अपना कार्य करते रहें; निरन्तर कार्य करते रहो, परन्तु एक लहर को भी अपने मन पर प्रभाव मत डालने दो। संसार में इस प्रकार कर्म करो, मानो तुम एक विदेशी पथिक हो, पर्यटक हो। कर्म को निरन्तर करते रहो, परन्तु अपने को बन्धन में मत डालो; बन्धन भीषण है। (वि.सा. ३.३२)

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते।।५.२१।।

बाहरी विषयों के संस्पर्श में अनासक्तचित्त ब्रह्म में संलग्न योगी आत्मा में जो नित्य सुख पाते हैं, वे अक्षय सुख प्राप्त करते हैं।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – यहाँ जिसे हम सुख और कल्याण कहते हैं, वह उसी अनन्त आनन्द का एक कण मात्र है। वही अनन्त आनन्द हमारा लक्ष्य है। (वि. सा. ५.२७)

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः।।५.२२।।

ज्ञानेन्द्रियों के साथ विषयों के संयोग से उत्पन्न जो भोग-सुख हैं, वे सब दुख के ही कारण हैं, क्योंकि उन सबका प्रारम्भ और अन्त है, अर्थात् वे विनाशशील हैं, अनित्य हैं। उन क्षणिक विषयानन्दों में ज्ञानी रमण नहीं करते।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – इस हीरे की खान को छोड़कर काँच के टुकड़ों में प्रवृत्त न हो। यह जीवन एक महान सुयोग है, क्या, तुम इसकी अवहेलना कर सांसारिक सुख में फँसना चाहते हो? वे निखिल आनन्द के मूल स्त्रोतस्वरूप हैं, उस परम श्रेयस् का अनुसन्धान करो, उस परम श्रेयस् को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाओ और तुम परम श्रेयस् को प्राप्त हो जाओगे। (वि. सा. २.३९०)

योन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति।।५.२४।।

जो आत्मा में ही सुखी, आत्मानन्द में ही मग्न तथा जिनका अन्तर ज्ञानालोक से प्रकाशित है, वे योगी ब्रह्मभाव प्राप्त होकर ब्रह्मनिर्वाण की प्राप्ति करते हैं।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – जब तुम अपने को बद्ध समझ रहे हो, तब तुम आत्मस्वरूप ब्रह्म, जिसे कोई अभाव नहीं, जो अन्तर्ज्योति है, नहीं रह गये। वह अन्तराराम है, आत्मतृप्त है, वह कुछ भी नहीं चाहता, उसमें कोई कामना नहीं है, वह सम्पूर्ण निर्भय और सम्पूर्ण स्वाधीन है। वही ब्रह्म है। उसी ब्रह्मस्वरूप में हम सभी एक हैं। (वि. सा. ५.२३८)

६. शरीर, मन और वाणी पर नियंत्रण

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ।। ६.१७।।

संयमित भोजन, विहार और कर्म में प्रयत्न करनेवाले, यथायोग्य निद्रा और यथासमय जागरण करनेवाले का चितवृत्ति-निरोधरूप समाधियोग सांसारिक दुखों को दूर करने वाला होता है।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – अगर स्वाद की इन्द्रिय को ढील दी, तो सभी इन्द्रियाँ बेलगाम दौड़ेंगी। (वि.सा.१०.२१८)

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।।१७.१४।।

देवता, ब्राह्मण, गुरु, प्राज्ञ अर्थात आचार्य की पूजा, शरीर और मन की पवित्रता, सरलता, शरीर-मन-वाणी से ब्रह्मचर्य-पालन और अहिंसा अर्थात् सब प्रकार से हिंसा का परित्याग, शारीरिक तपस्या कही जाती है।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – ब्रह्मचर्यवान मनुष्य के मस्तिष्क में प्रबल शक्ति – महती इच्छा-शक्ति संचित रहती है। ब्रह्मचर्य के बिना और किसी भी उपाय से आध्यात्मिक शक्ति नहीं आ सकती। इसके द्वारा मनुष्य-जाति पर आश्चर्यजनक क्षमता प्राप्त की जा सकती है। मानव-समाज के सभी आध्यात्मिक नेतागण ब्रह्मचर्यवान थे, उन्हें सारी शक्ति इस ब्रह्मचर्य से ही प्राप्त हुई थी। (वि.सा. १.१७९)

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते।।१७.१६।।

(मानसिक तपस्या क्या है, उसे कहते हैं) चित्त की प्रसन्नता, शान्त भाव, मौन अर्थात् वाक्य-संयम, मनःसंयम, आत्मनिग्रह अर्थात् विषयों से मन को आकर्षित करके ध्येय वस्तु में निविष्ट रखना तथा भावशुद्धि अर्थात् व्यवहार में निष्कपटता, इन्हें मानसिक तपस्या कहते हैं।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – योगी के लिए नैतिकता का मूल्य यह है कि वह मन को निर्मल बनाती है। मन

जितना ही निर्मल होगा, उसे वश में करना उतना ही सरल होगा । यदि तुम मन को नियंत्रित करना चाहते हो, तो उसकी पवित्रता पर ध्यान देना होगा। (वि.सा.४.१२४)

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।। १७.१५।।

जो वाक्य किसी के उद्वेग का कारण नहीं होता, जो सत्य, प्रिय और हितकर है, ऐसे वाक्य तथा विधि के अनुसार वेदादि शास्त्रों का अभ्यास वाचिक तपस्या है।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – एक व्यक्ति दूसरे को मूर्ख कह देता है और बस, इतने से ही वह दूसरा व्यक्ति उठ खड़ा होता है और अपनी मुट्ठी बाँधकर उसकी नाक पर घूँसा जमा देता है । देखो तो, शब्द में कितनी शक्ति है ! इस शक्ति के सम्बन्ध में विशेष विचार और अनुसन्धान न करते हुए ही हम रात-दिन इस शक्ति का उपयोग कर रहे हैं। इस शक्ति के स्वरूप को जानना तथा इसका उत्तम रूप से उपयोग करना भी कर्मयोग का एक अंग है। (वि. सा. ३.४९)

७. क्रोध पर नियंत्रण

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।२.६२।।

विषयों को सोचते रहने से मनुष्य की उनमें आसक्ति उत्पन्न होती है, आसक्ति से कामना पैदा होती है, कामना से क्रोध होता है।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – यदि हम अपने जीवन का विश्लेषण करें, तो हम देखेंगे कि दुख का सबसे बड़ा कारण यह है – हम कोई बात हाथ में लेते हैं और अपनी पूरी शक्ति उसमें लगा देते है; कभी-कभी असफलता होती है, पर फिर भी हम उसका त्याग नहीं कर सकते। यह आसक्ति ही हमारे दुख का सबसे बड़ा कारण है। हम जानते हैं कि वह हमें हानि पहुँचा रही है और उसमें चिपके रहने से केवल दुख ही हाथ आयेगा, परन्तु फिर भी हम उससे अपना छुटकारा नहीं कर सकते। (वि.सा. ९.१७६)

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।२.६३।।

क्रोध से मोह होता है, मोह से स्मृतिशक्ति का लोप, स्मृति का नाश होने से विचार-बुद्धि का नाश और बुद्धि के नष्ट होने पर मनुष्य नष्ट हो जाता है।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – जब कभी हम घृणा अथवा क्रोध की वृत्ति को संयत करते हैं, तभी वह हमारे अनुकूल शुभ शक्ति के रूप में संचित होकर उच्चतर शक्ति में परिणत हो जाती है। (वि.सा. १.१३८)

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।।२.६४।।

राग-द्वेष रहित होकर अपने वशीभूत इन्द्रियो के द्वारा विषयों का उपभोग करके संयतेन्द्रिय मनुष्य अपने मन में प्रसन्नता प्राप्त करता है।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – मन की सारी बहिर्मुखी गति किसी स्वार्थपूर्ण उद्देश्य की ओर दौड़ती रहने से छिन्न-भिन्न होकर बिखर जाती है, वह फिर तुम्हारे पास शक्ति लौटाकर नहीं लाती। परन्तु यदि उसका संयम किया जाय, तो उससे शक्ति की वृद्धि होती है। इस आत्मसंयम से महान इच्छाशक्ति का प्रादुर्भाव होता है; वह बुद्ध या ईसा जैसे चरित्र का निर्माण करता है। (वि.सा. ३.९)

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।।२.६५।।

चित्त के प्रसन्न होने पर सभी दुखों का नाश हो जाता है। प्रसन्नचित व्यक्ति की प्रज्ञा शीघ्र ही परमात्मा में प्रतिष्ठित होती है।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – हम शान्ति से रहें, पूर्ण शान्ति से रहें, और अपना सम्पूर्ण शरीर, मन, यहाँ तक कि अपना सर्वस्व श्री भगवान के समक्ष चिर बलिस्वरूप दे दें।... रात-दिन हमें इस तथाकथित भासमान 'अहं' का त्याग करते रहना चाहिए, जब तक कि यह स्वभाव के रूप में परिणत न हो जाय,... फिर तुम तोप के धमाकों और रण के तुमुल कोलाहल से पूर्ण युद्धक्षेत्र में जाओ, वहाँ पर भी तुम अपने को सदैव मुक्त और शान्तियुक्त पाओगे।

–स्वामी विवेकानन्द (वि.सा. ३.७६) **(क्रमशः)**
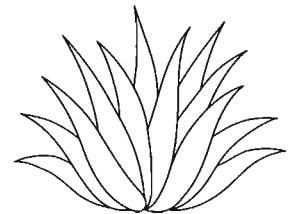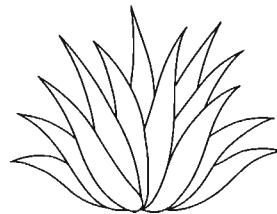
भगिनी निवेदिता : शिक्षा को समर्पित एक जीवन

श्रीराम अग्रवाल, डोंगरगढ़ (छ.ग.)

(भगिनी निवेदिता की १५० वीं जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में उनके जीवन और सन्देश से सम्बन्धित यह लेखमाला 'विवेक ज्योति' के पाठकों के लाभार्थ आरम्भ की गई है। – सं.)

भगिनी निवेदिता स्वामी विवेकानन्द की शिष्या थीं, जिन्होंने अपना जीवन भारत की सेवा में समर्पित किया। शिक्षा के क्षेत्र में उनका महान योगदान है। वे चिन्तक के साथ-साथ अपनी योजनाओं को साकार करने के लिए कार्य करती रहीं। यदि उनके शैक्षिक चिन्तन को आज क्रियान्वित किया जाए, तो शिक्षा जगत की कई समस्याएँ सुलझ सकती हैं। वे सत्रह वर्ष की आयु में शिक्षा के क्षेत्र से जुड़ गई थीं। जीवन के अंतिम दिनों तक यदि कोई उनसे पूछता कि वे क्या रही हैं, तो वे गर्व से कहतीं 'मैं शिक्षिका हूँ'।

स्वामी विवेकानन्द से मिलने से पहले निवेदिता लंदन में शिक्षा जगत में काफी प्रसिद्ध थीं। उस समय वे विम्बलडन में रस्किन विद्यालय चला रही थीं, जो नई शिक्षा प्रणाली के सिद्धान्तों पर आधारित था। वे स्वामीजी के आमन्त्रण पर २८ जनवरी, १८९८ में भारत आईं और उसी वर्ष नवम्बर में उन्होंने कलकत्ता में एक विद्यालय प्रारम्भ किया और स्वामी विवेकानन्द उन्हें शिक्षाशास्त्री के रूप में मिले, जिन्होंने शिक्षा की रूपरेखा निर्धारित की।

शिक्षा के बारे में उनके विचार भारत आने के बाद नहीं बदले बल्कि वे भारतीय लोगों की आवश्यकतानुसार पुनर्गठित हुए। स्वामी विवेकानन्द की दार्शनिक एवं धार्मिक शिक्षा ने उन्हें बहुत प्रभावित किया। स्वामी विवेकानन्द की शिक्षा सम्बन्धी जिस धारणा से वे प्रभावित हुई थीं, वह स्वामीजी के शब्दों में इस प्रकार है –"सम्पूर्ण शिक्षा एवं प्रशिक्षण का उद्देश्य मनुष्य का निर्माण होना चाहिए, सभी प्रशिक्षण का उद्देश्य एवं निष्कर्ष है मनुष्य को अपना विकास करने की विधि सिखाना। वह प्रशिक्षण जो व्यक्ति की इच्छा शक्ति के प्रवाह एवं उसकी अभिव्यक्ति को वश में करे तथा उसे फलीभूत करे, वही शिक्षा है।"

निवेदिता ने एक विद्यालय १८९८ को प्रारम्भ किया था, जिसे आज 'रामकृष्ण-सारदा मिशन निवेदिता विद्यालय' के नाम से जानते हैं। यह पहला विद्यालय था, जिसमें राष्ट्रीय चेतना विकसित की जाती थी, 'वंदे मातरम्' बच्चों की दैनिक प्रार्थना के रूप में गाया जाता था।

शिक्षा के क्षेत्र में निवेदिता का योगदान लोगों को सोचने तथा कार्य करने की शक्ति प्रदान करने में था, जो उस युग की माँग थी। १९०१ में उन्होंने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण करते हुए व्याख्यान दिये। उन्होंने समस्याओं के समाधान के लिए शिक्षा को ही उपाय बताया। उन्होंने श्रोताओं से कहा, "मेरा ध्येय आपको चिन्तन करना सिखाना है। मैं शिक्षा की समस्याओं पर सोचते हुए जी रही हूँ। मैं आपको स्वयं के बारे में सोचने में सहायता करने आई हूँ क्योंकि मुझे चिन्तन की शक्ति पर विश्वास है। शिक्षा के कार्य तथा उद्देश्य आपको स्वयं को निर्धारित करने हैं। कोई भी राष्ट्र तब तक महान नहीं हो सकता, जब तक वहाँ के देशवासियों को अच्छी शिक्षा न मिली हो। जो शिक्षा आपको चाहिए, उसे देश में खोजना ही चाहिए।"

निवेदिता के शिक्षा सम्बन्धी विचार

शिक्षा के सम्बन्ध में भगिनी निवेदिता कहती हैं – "शिक्षा ही तो भारतवर्ष की समस्या है। कैसे प्रकृति शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा की व्यवस्था हो सकती है, यूरोप के निकृष्ट अनुकरण के बदले भारतवर्ष की एक सच्ची सन्तान के रूप में तुमलोगों का निर्माण किया जा सके, यही समस्या है। तुमलोगों की शिक्षा हृदय, आत्मा तथा मस्तिष्क के विकास की होगी। तुम्हारी शिक्षा का लक्ष्य परस्पर के बीच तथा अतीत और वर्तमान जगत के बीच साक्षात् सम्बन्ध स्थापित करना होगा। शिक्षा का अर्थ बाहरी ज्ञान तथा शक्ति संचय करना नहीं, अपनी भीतर की शक्ति को सम्यक् रूप से विकसित करने की साधना है। भारतवर्ष की शिक्षा की भित्ति है – त्याग और प्रेम। आत्मत्याग से प्रेम का जन्म होता है तथा प्रेम से त्याग की उत्पत्ति और प्रसार होता है। त्याग का अर्थ नि:स्वार्थ होना नहीं है। अक्षयधन से धनी होने का मार्ग ही त्याग है। त्याग का तात्पर्य संसार के भय से पलायन करना नहीं है, बल्कि जगत में विजयी होने का एकमात्र उपाय आत्मत्याग है।"

भगिनी निवेदिता की शिक्षा छात्रों को तेजस्वी, वीर और राष्ट्रभक्त बनाने की थी। जनवरी, १९०४ ई. में पटना में छात्रों को भाषण देते समय भगिनी निवेदिता ने कहा था – ''बालकों के मुखमंडल पर अपरिमेय शान्ति देखकर मैं दुखी होऊँगी। मैं चाहती हूँ कि तुमलोग आपस में मल्लयुद्ध करो, मुक्केबाजी करो, तलवार चलाओ। हमें प्रमादी, आलसी, निरीह लोग नहीं चाहिए। चाहिए शक्तिशाली मनुष्य।

''केवल बलिष्ठ होना ही श्रेयस्कर नहीं है, वीर होना होगा। वही वीर है, जो युद्ध करना पसन्द करता है। परन्तु उसमें नीचता या कड़वापन न रहे। ... जब संग्राम की पुकार आएगी, उस समय सोये मत रहना।''

''शिक्षार्थी को यह याद रखना होगा कि उसका उद्देश्य केवल अपना विकास और कल्याण नहीं है। बल्कि जन, देश और धर्म के प्रति दृष्टि रखकर ही वह शिक्षाग्रहण करे। वही शिक्षार्थी को यथार्थ मनुष्य बनाकर स्वदेश सेवा में नियुक्त करता है। यह स्वदेश प्रेम जब हृदय में दृढ़ रूप से अंकित होकर देश की संस्कृति तथा आदर्श को गर्व के साथ श्रद्धा करना सिखाता है, तभी दूसरी जाति के महत्त्व तथा उच्च आदर्श के यथार्थ मर्म को ग्रहण करना सम्भव होता है।''

सर्वप्रथम शिक्षा एक नैतिक कार्य है, जो प्राथमिक रूप से मनुष्य की नैतिकता से जुड़ा है। वास्तविक रूप से शिक्षा एक प्रकार से इच्छाशक्ति का प्रशिक्षण है। जब तक हम अपनी भावनाओं और रुचियों को परिष्कृत नहीं करते हैं, तब तक मनुष्य शिक्षित नहीं हो सकता। उसने केवल बौद्धिक चतुरता सीखी है। इन चालाकियों से वह रोटी कमा सकता है। परन्तु वह किसी के हृदय तक नहीं पहुँच सकता और न ही किसी को जीवन दे सकता है। वह किसी भी मूल्य पर मनुष्य नहीं है, बल्कि वह एक चालाक बंदर है। मनुष्य के लिए इससे तुच्छ बात और क्या हो सकती है कि वह ज्ञान की प्राप्ति सांसारिक वस्तु प्राप्त करने के लिए करे।''

निवेदिता का मानना था कि संसार के बुद्धिमान लोगों को उन सनातन मूल्यों से परिचित कराया जाए, जो सदा शाश्वत और अपरिवर्तित रहते हैं। वे चरित्र निर्माण पर बहुत बल देती थीं। उनका कहना था कि विचारों और भावनाओं का जीवन ही वास्तविक जीवन है। किसी व्यक्ति के उच्च जीवन के द्वार को बन्द करना, उसकी हत्या करने से भी बड़ा पाप है। वे कहती थीं कि बालक का विकास केवल उसके अपने लिए ही नहीं, अपितु जन, देश और धर्म के लिए करना चाहिए। बालक का पहला कर्त्तव्य है कि वह स्वयं से पूछे कि भारत की उससे क्या आशाएँ हैं। अन्तर्राष्ट्रीय चिन्तन के सम्बन्ध में निवेदिता का स्पष्ट मत था, सुदृढ़ राष्ट्रीय भवन पर ही अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध पनप सकते हैं। वे भारत की इस परम्परा की पोषक थीं, जिसमें बच्चों को विशेष अवसरों पर व्रत रखना सिखाया जाता है। वे कहती थीं व्रत से अधिक पूर्ण शिक्षा और कुछ नहीं हो सकती, जिसे भारतीय समाज ने सम्हाल कर रखा है तथा प्रत्येक पीढ़ी के बच्चों को प्रदान किया है। उनके सभी विचारों का आधार था, विद्यार्थी अपनी मातृभूमि से प्रेम करना तथा उसकी सेवा करना सीखें। हमें बच्चों के चारों ओर देशभक्ति का परिवेश बनाना चाहिए और उनसे देश तथा राष्ट्रभक्ति की ही बात करनी चाहिए। हमें उन्हें देशभक्ति और देश के लिये त्याग करना सिखाना चाहिए।

नारी शिक्षा के बारे में भगिनी निवेदिता ने कहा था – ''आदर्श के प्रति ध्यान रखकर वर्तमान परिस्थिति हेतु उपयोगी शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी। ... जो शिक्षा बुद्धि का उन्मेष करते हुए नम्रता तथा कमनीयता को नष्ट कर दे, वह वास्तविक शिक्षा नहीं हो सकती। अत: भारतीय नारियों के लिये एक ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है, जिसका उद्देश्य होगा मानसिक तथा आध्यात्मिक वृत्तियों में पारस्परिक सहयोगिता का विकास करना।''

एक बार निवेदिता, क्रिस्टीन, रवीन्द्रनाथ, जगदीशचन्द्र बसु, अबला बसु सभी एक साथ घूमने गए थे। प्रतिदिन सन्ध्या को बोधिवृक्ष के नीचे बैठकर निवेदिता ध्यान करती थीं। बोधिवृक्ष से कुछ दूर एक गोल पत्थर पर एक वज्र-चिह्न खुदा हुआ था। उसे देखकर निवेदिता ने कहा – ''भारतवर्ष के राष्ट्रीय चिह्न के रूप में इसे ग्रहण करना चाहिए।'' दूसरों के द्वारा पूछे जाने पर उन्होंने कहा, ''इसका अर्थ यह है कि जब कोई सारी मानव जाति के कल्याण के लिये सर्वस्व त्याग करता है, तब वह इस वज्र के समान ही शक्तिशाली होकर देवनिर्दिष्ट कार्य करता है। भारत का मूल आदर्श है त्याग। इसलिए वज्र भारत का राष्ट्रीय चिह्न होना चाहिए।''

स्वामी विवेकानन्द जी ने निवेदिता के गुणों और उनके व्याख्यान से प्रसन्न होकर कहा था, ''निवेदिता महाप्राण हैं, उदारहृदय एवं पवित्र हैं। वह भारत की सेवा में अपना प्राण समर्पित करने आयी हैं।'' रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भगिनी निवेदिता को 'लोकमाता' और विनय कुमार सरकार ने 'मानवतावादी', 'भारतीयों की सम्पदा' कहा है। ○○○

श्रीगुरु की महिमा

स्वामी रुद्रेश्वरानन्द

रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

जगत में किसी भी प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने के लिये हमें एक मार्गदर्शक की आवश्यकता होती है। सामान्य ज्ञानार्जन के लिए जब एक शिक्षक की आवश्यकता होती है, तब आध्यात्मिकता जैसी गहन वस्तु के विषय में तो कहना ही क्या! शास्त्रों ने इस मार्ग पर चलना छुरे की धार पर चलने के समान बताया है। अध्यात्म पथ पर ठीक-ठीक चलने के लिए गुरु की नितान्त आवश्यकता है। श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं, ''गुरु के उपदेश के अनुसार चलना पड़ता है, टेढ़े रास्ते से जाने पर फिर सीधे रास्ते पर आने में कष्ट होगा। मुक्ति बहुत देर में होती है।''(१.२९)

मनुष्य-जीवन का उद्देश्य है – आत्मसाक्षात्कार। आत्मसाक्षात्कार का क्या अर्थ है? जीव, आत्मा की परमात्मा के साथ एकरूपता को आत्मसाक्षात्कार कहा जाता है। यदि आत्म-साक्षात्कार करना है तो ऐसे महापुरुष की शरण जाना होता है, जिन्होंने स्वयं भी यह परमोच्च स्थिति प्राप्त की हो अथवा इस मार्ग में काफी आगे बढ़ चुके हों। ऐसे महापुरुष को गुरु के रूप में स्वीकार कर साधक अपना सर्वोच्च अभीष्ट सिद्ध करता है।

गुरु के प्रति श्रद्धा

गुरु के प्रति भक्ति होनी चाहिए। गुरु के ऊपर विश्वास हो जाने से उनके वचनों में दृढ़ विश्वास होना चाहिए और उसके अनुसार ही साधन-भजन करना चाहिए। शास्त्रों में कहा गया है कि –

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।

जिस प्रकार ईश्वर के प्रति भक्ति होती है उसी प्रकार गुरु के प्रति होनी चाहिए। इस प्रकार की भक्ति होने से सत्य अपने-आप प्रकट होता है। श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं, ''मनुष्य गुरु से यदि कोई दीक्षा लेता है, तो उन्हें मनुष्य मानने से कुछ नहीं होगा। उन्हें साक्षात् ईश्वर मानना होगा, तभी मन्त्र पर विश्वास होगा। विश्वास हुआ कि सब कुछ हो गया! शूद्र एकलव्य ने मिट्टी के द्रोणाचार्य बनाकर वन में बाण चलाना सीखा था। मिट्टी के द्रोण की पूजा करता था – साक्षात् द्रोणाचार्य मानकर ! इसी से वह धनुर्विद्या में सिद्ध हो गया। ''

गुरु का कार्य

अविद्या से वासना उत्पन्न होती है और वासना से कठिन बंधन उत्पन्न होता है जिसकी यातना जीव को सहनी पड़ती है। भले ही वह राजा या रंक हो उस कर्म को भोगने के लिए वह इस जन्म-मृत्यु चक्र में फँसता है । उस अविद्या का ज्ञान से खंडन करके आने वाले दुख को टालने का कार्य 'सदगुरु' करते हैं।

'गुरु-गीता' में कहा गया है –

गुशब्दश्चान्धकारः स्याद् रुशब्दस्तन्निरोधकः ।
अन्धकारनिरोधित्वात् गुरुरित्यभिधीयते ।।

'गु' शब्द का अर्थ है 'अन्धकार', और 'रु' शब्द का अर्थ है 'दूर करना'। जो हमे अज्ञान रूपी अन्धकार से ज्ञान रूपी प्रकाश की ओर ले जाता है उसे गुरु कहते हैं। जो माया और अविद्या से छुड़ाते हैं उसे सदगुरु कहते हैं। इस प्रसंग को बताने के लिए श्रीरामकृष्ण देव एक कहानी सुनाते थे –

एक बार जंगल में एक गर्भवती सिंहिनी ने नदी के उस पार बकरियों का झुंड देखा। शिकार करने की कोशिश में उसने छलांग मारी। वह बुरी तरह घायल हो गयी और उसी समय बच्चे को जन्म दे दिया। उसके बाद उसकी मृत्यु हो गयी। अब सिंह का बच्चा बकरियों के झुंड में मिल गया और वहीं पलने-बढ़ने लगा। बकरियाँ घास-पत्ते खातीं तो वह भी घास-पत्ते खाता। वे 'में-में' करतीं, तो सिंहिनी का बच्चा भी 'में-में' करता। एक दिन उस बकरियों के झुण्ड में एक सिंह आ गया। वह उस घास चरने वाले सिंह को देख आश्चर्य से दंग हो गया। उसने दौड़कर उस घास चरने वाले सिंह को पकड़ लिया। वह 'में-में' चिल्लाने लगा। सिंह ने उस घास चरने वाले सिंह को घसीटा और जलाशय के पास ले गया और बोला, ''देख ! जल के भीतर अपना

मुँह देख। देख, तू ठीक मेरे जैसा है।'' यह कहकर वह उसे जबरदस्ती माँस खिलाने लगा। पहले तो वह किसी तरह राजी नहीं हो रहा था, 'में-में' कर चिल्ला रहा था, पर अन्त में स्वाद पाकर खाने लगा। तब नए सिंह ने कहा, ''अब समझा न कि जो मैं हूँ, वही तू भी है! अब आ मेरे साथ वन में चल।''

हम लोग भी उस घास चरने वाले सिंह की तरह है। अपने दैवी अस्तित्व का हमें विस्मरण हो गया है। गुरु आकर हमें अपने वास्तविक स्वरूप का स्मरण करा देते हैं और सत्य के मार्ग पर ले जाते हैं।

स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज एक कहानी का उल्लेख करते थे। एक दिन एक गरीब व्यक्ति ने राजा के प्रधानमंत्री से आग्रह किया कि उसे राजा का दर्शन करना है। प्रधानमंत्री उसे राजा का दर्शन कराने ले गया। राजा एक भव्य महल में रहता था, जिसमें सात दरवाजे थे और प्रत्येक दरवाजे पर एक मंत्री बैठा रहता था। मन्त्री का भी अपना ठाट-बाट रहता था। गरीब व्यक्ति प्रत्येक मंत्री को देखता और प्रधानमंत्री से पूछता क्या यही राजा है, उसे प्रत्येक बार 'ना' उत्तर मिलता। जब वह अन्तिम द्वार पर पहुँचा तो उसने देखा कि राजा सुवर्ण सिंहासन पर बैठे हुए हैं और उनके आसपास अनेक मंत्री-सभापति बैठे हुए हैं। अब उसने प्रधानमंत्री से कुछ प्रश्न नहीं किया। उसके मन की शंका भी समाप्त हो गयी। स्वामी ब्रह्मानन्द इस संदर्भ में कहते हैं कि गुरु उस प्रधानमन्त्री की तरह है। वे अपने शिष्य को विभिन्न आध्यात्मिक स्तरों पर ले जाते हैं और अन्ततः भगवान से मिला देते हैं।

गुरु शिष्य को सत्य का मार्ग दिखाकर उसकी रक्षा करते हैं। इसमें कोई संशय नहीं है कि शिष्य को गुरु के प्रति अपार श्रद्धा होनी चाहिए।

गुरु स्तोत्र में यह कहा गया है –

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरून्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

जिसने ज्ञानांजनरूप शलाका से अज्ञानरूप अन्धकार से अन्धे हुए लोगों के नेत्र खोले, उन श्रीगुरु को प्रणाम। ❍

बड़प्पन का अहंकार

सुभाष भट्ट

मानव जीवन में अहंकार बहुत बड़ा दोष है। यह जीवन का अभिशाप है। जीवन में बड़प्पन (बड़े होने) का अहंकार व्यक्ति को कुछ सीखने-समझने तो देता ही नहीं, बल्कि उसे घर, परिवार, समाज, सद्ज्ञान, सुशिक्षा आदि से दूर करता चला जाता है। यदि घर के वरिष्ठ सदा बड़प्पन के अहंकार में रहते हैं, तो वे घर के सदस्यों से निरन्तर कोसों दूर चले जाते हैं। दूसरी ओर यदि आप प्रेमपूर्वक विनम्रता से सबसे व्यवहार करते हैं, तो आप सबकी दृष्टि में ऊँचे उठते जाते हैं। आपकी प्रतिष्ठा में कोई आंच नहीं आती है, बल्कि और अधिक बढ़ती जाती है और आपके विनम्र व्यवहार से सब लोग आपके समीप चले आते हैं। आप सबके हृदय में बसकर सबके सिरमौर होते चले जाते हैं।

यदि हम विचार करें, तो देखेंगे कि 'बड़प्पन का अहंकार' घर-परिवार को विभिन्न संदर्भों में जोड़ने के स्थान पर तोड़ने का कार्य करता है। जब आप छोटों से स्नेहिल व्यवहार नहीं करते हैं, उनसे वार्तालाप नहीं करते, तो वे भी आपका सम्मान नहीं करते और आपसे बात नहीं करते हैं। इससे दूरियाँ बढ़ती हैं। ऐसा व्यवहार जीवन को भार बना देता है। आपके जीवन में आनन्द कभी नहीं आ पाएगा। तभी तो तुलसीदासजी ने लिखा – 'अहंकार अति दुखद डमरुआ।'

आपको अपना आत्मनिरीक्षण करते हुए यह सोचना चाहिए कि छोटे या अन्य लोग आपसे बात क्यों नहीं करते? हमारे अन्दर ऐसी क्या कमियाँ हैं, जिनसे लोग हमसे दूर होते जा रहे हैं। किन्तु हम ऐसा विचार नहीं कर दूसरों को दोष देते हैं। सच्चाई यह है कि 'मैं' रूपी बड़प्पन के आवरण के नशे में डूबकर वैसे लोग 'स्व' का मूल्यांकन कर ही नहीं पाते हैं ! उनके अनुसार वे जो करते हैं, सोचते हैं, निर्णय लेते हैं, वह सही है। दूसरे की भाव-भावना का तो ध्यान नहीं रखते।

लेकिन यदि आप अपने बड़प्पन के अहंकार का त्यागकर सबसे प्रेम से, विनम्रता और निष्कपटता से व्यवहार करें, तो सभी आपके प्रेम-पाश में बँध जाएँगे। होली, दिवाली आदि

त्योहारों में लोग आपसे जुड़कर आपका कुशलक्षेम पूछेंगे। आपके जीवन और परिवार, समाज के जीवन में समरसता आएगी। हृदय में प्रेम-भाव का संचार होगा, जो जीवन में ऊर्जा, शक्ति प्रदान करेगा। तब यह संसार स्वर्ग हो जाएगा।

'बड़प्पन का अहंकार' पद, प्रतिष्ठा, वैभव, धन सम्पत्ति आदि के अर्जित करने से भी हो जाता है। व्यक्ति इन चीजों से समाज में अपना बड़प्पन दिखाकर लोगों को प्रभावित करना चाहता है। किन्तु ठीक इसके उलटा भी हो सकता है। लोग आपसे दूर हो सकते हैं और आप अकेलेपन का शिकार होकर अवसादग्रस्त हो सकते हैं।

सत्य यह है कि पद-प्रतिष्ठा, धन-वैभव, ये सब नश्वर चीजें हैं, इनके आधार पर बड़प्पन को जताना, यह मनुष्य की भूल है। ये कभी भी समाप्त हो सकती हैं। जैसे इन सबके अहंकार में रावण का सब कुछ स्वाहा हो गया था।

प्रेम, सरलता, सादगी, विनम्रता, शालीनता ही मानव के स्थाई सद्‌गुण हैं, जिनसे अपना और दूसरों का कल्याण होता है।

वर्तमान युग में आजकल अधिकांश परिवारों में तनाव का वातावरण देखने को मिलता है। माँ बाप का तिरस्कार, भाई-भाई में ईर्ष्या-द्वेष, प्रेममय वातावरण का अभाव, संघर्षमय जीवन, समय का अभाव आदि लोगों के जीवन के साथ देखने को मिलता है। यदि इसमें बड़प्पन के अहंकार का तड़का लग जाए, तब तो पूछना ही क्या है ! यह आपसी सम्बन्धों को बिगाड़ देता है। साथ ही लोगों में दूरियाँ बढ़ा देता है। जबकि आज परिवार, समाज में प्रेम, धैर्य, सामंजस्य और समर्पण की आवश्यकता है। यदि आपमें ये सद्‌गुण हैं, तो परिवार, समाज आपको अपनी पलकों में बिठाने के लिए लालायित रहेगा। अत: आप इन गुणों को अपनाकर समाज को सुखमय जीवन-पथ पर ले जाने में सक्षम होंगे।

बड़प्पन का अंहकार व्यक्ति को कुछ भी सीखने नहीं देता है। बड़प्पन के अहंकार के आवरण से ज्ञान-चक्षु खुल नहीं पाते हैं। क्योंकि अहंकारी अपने को ही सबसे बड़ा मानता है। जबकि ज्ञान की प्राप्ति विनम्रता से 'गुरु' की श्रद्धा, सेवा और जिज्ञासा करने से होती है। इस सन्दर्भ में एक दृष्टान्त है – राजा त्रिविक्रम को पढ़ने-लिखने का शौक था। उन्होंने विद्वान शिक्षक की पढ़ाने हेतु व्यवस्था की। शिक्षा ग्रहण करते-करते कई महीने बीतने के बाद भी त्रिविक्रम को कोई ज्ञान प्राप्त नहीं हो रहा था। एक दिन रानी ने त्रिविक्रम को परामर्श दिया, आप गुरुजी से पूछिए कि क्या कारण है कि महीनों से मैं आपसे शिक्षा ग्रहण कर रहा हूँ, किन्तु मुझे कोई लाभ नहीं हो रहा है। गुरु ने शान्त स्वर में उत्तर दिया, राजन् आप बड़प्पन के अहंकार के कारण कुछ सीख नहीं पा रहे हैं। बड़प्पन का भाव आपके मन में सीखने का भाव उत्पन्न नहीं होने दे रहा है। गुरु को यह लगा कि राजा को कारण समझ आ गया होगा। लेकिन ऐसा नहीं था। पुन: गुरु ने बात बढ़ाते हुए कहा, आप एक राजा हैं। पद और प्रतिष्ठा में मुझसे बड़े हैं, परन्तु यहाँ मेरा और आपका सम्बन्ध गुरु-शिष्य का है। गुरु होने के नाते मेरा स्थान आपसे ऊँचा होना चाहिए, पर आप स्वयं ऊँचे सिंहासन पर बैठते हैं और मुझे नीचे आसन पर बिठाते हैं। यही कारण है कि आपको कोई शिक्षा नहीं मिल रही है। आप राजा हैं, इसलिए मैं यह बात आपसे कह नहीं पा रह था। त्रिविक्रम को अपनी भूल समझ में आ गयी कि ज्ञान की प्राप्ति विनम्रतापूर्वक गुरु को श्रद्धा और जिज्ञासा करने से होती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अहंकार किसी भी प्रकार हो वह व्यक्ति के व्यक्तित्व का नाश ही करता है। अहंकार एक ऐसे विष के समान है, जो सम्पूर्ण परिवार को समाप्त कर डालता है। डॉ. विष्णुदत्त सक्सेना की ये काव्य पँक्तियाँ सटीक मालूम पड़ती हैं –

गुरुर जिसने ज़हन में पाला होगा,
खुली हों खिड़कियाँ, फिर भी न उजाला होगा।
ख़ुद की परछाईयां जब क़द से बड़ी हो जाएं,
उसका सूरज समझ लो डूबने वाला होगा।।

अत: अहंकार को छोड़ें और अपने जीवन, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व में सोहार्द और सामंजस्य स्थापित करें। ○○○

विवेक की मदद से जीवन को सार्थक बनाएँ

दलाई लामा

समय हमेशा बहता रहता है । कोई शक्ति उसे रोक नहीं सकती । समय की धारा में बहते हुए हम इतना कर सकते हैं कि उसका सदुपयोग करें । उसे अपने लिये सार्थक बनाएँ । जीवन को सार्थक बनाने का तात्पर्य यह है कि हमें सन्तुष्टि मिले । हमें जीवन की सार्थकता के लिए प्रयास करना ही चाहिए ।

कुछ लोग यदि दूसरों को सताने, उनके साथ धोखा करने और उन्हें परेशान करने में ही समय व्यतीत करते हैं, तो इससे उन्हें तात्कालिक राहत तो मिल सकती है, लेकिन दीर्घ काल तक मन पर एक बोझ बना रहता है, एक भार बना रहता है । वैसे लोगों के जीवन में कभी भी संतुष्टि का भाव नहीं आ सकता । भले ही वे लोग किसी ईश्वर को नहीं मानते हों, किन्तु यदि अधिक समय इसी तरह की चीजों में बिताते हैं, तो वे असहज महसूस कर सकते हैं । इसलिए अपने समय को उन कार्यों में लगाना चाहिए, जो आपको सच्ची संतुष्टि देते हैं । पैसे से आपके जीवन में संतुष्टि नहीं आ सकती है । जब आप पैसे के पीछे जाते हैं, तो और अधिक, और अधिक ही करते रहते हैं, आपकी तृष्णा बढ़ती जाती है और इस प्रकार की वृत्ति से आपको कभी सन्तुष्टि नहीं मिल सकती । लेकिन जब आप अपने जीवन में करुणा जगाते हैं, तो उससे आपको संतुष्टि और प्रसन्नता प्राप्त होती है । जीवन की सार्थकता का अनुभव होता है । हमारे जीवन का लक्ष्य इस संतुष्टि को पाने का ही होना चाहिए ।

अपने जीवन को सार्थक कैसे बनाएँ, यह प्रश्न अधिकांश लोगों के मन में उठता रहता है । मैं मानता हूँ कि हमें मनुष्य के स्तर पर सोचना चाहिए । पीड़ा और आनन्द तो सभी जीव-जन्तु समान रूप से अनुभव करते हैं । यहाँ तक कि वृक्ष भी संवेदना व्यक्त करते हैं । लेकिन मनुष्य के पास बुद्धि है, विवेक है, जो उसे दूसरों से अलग करता है । चूँकि हमारे पास विवेक है, तो हमारी प्रसन्नता भी बड़ी होनी चाहिए । लेकिन हमारी बुद्धि ही हमारी बहुत-सी समस्याओं का कारण बन गयी है । बुद्धि ही आज मनुष्य के तनाव का कारण बन गई है । पढ़े-लिखे लोग अधिक तनाव में रहते हैं, क्योंकि वे अपेक्षाओं और भय में जीवन जीते हैं । इसके कारण उनके सिर पर चिन्ताएँ बनी रहती हैं । मनुष्य के मन में आशा और डर बना रहता है, क्योंकि वह बहुत कुछ सोचता रहता है । जानवरों की सोच तात्कालिक होती है, लेकिन हम आगे का और बल्कि पीछे का भी सोचते हैं । हम केवल अपने ही जीवन के बारे में नहीं सोचते, बल्कि पीढ़ियों के बारे में सोचने लगते हैं । यहीं से हमारे जीवन में चिन्ता का स्थान बन जाता है ।

आजकल कुछ वैज्ञानिकों ने अपने अनुसन्धान से यह सिद्ध किया है कि यदि आपके मस्तिष्क में नियमित डर, क्रोध और घृणा बनी रहती है, तो वह शरीर की बहुत अधिक हानि करती है । शान्त मस्तिष्क सबसे अधिक आवश्यक है ।

जब मैं युवा था, तो अपने यहाँ झाड़ू लगाने वालों से बात करता था, जो गाँव के रहने वाले थे । वे पढ़े-लिखे भी नहीं थे । जब मैं उन लोगों से बात करता था, तो वे खुलकर जवाब देते थे । वे किसी की भी शिकायत कर देते थे । जो कुछ उनके मन में होता, वह कह देते । जबकि मैं जब भी कुछ पढ़े-लिखे लोगों से बात करता था, तो वे लोग 'ठीक है' और 'हाँ या ना' में ही उत्तर देते थे । जितना अशिक्षित व्यक्ति है, वह उतना अधिक प्रेम से उत्तर देता था, स्पष्ट निर्भय होकर बात करता था । इसलिये इस प्रकार के ईमानदार और सच्चे लोग ही विश्वास जीतते हैं और उनके साथ मित्रता लम्बी चलती है । भले ही आप विश्वास करें या न करें, ऐसे लोग ही जीवन में संतुष्टि पाते हैं । जब तक आप स्वकेन्द्रित हैं, बहुत सोचकर, चयनित लोगों से वार्तालाप करते हैं, तब तक शान्ति नहीं पा सकते । जब मस्तिष्क बहुत चीजों से भरा नहीं रहता है, रिक्त रहता है, तब शरीर और मन अधिक अच्छा रहता है । ○○○

(दलाई लामा के व्याख्यान का संपादित अंश नई दुनिया, रायपुर २५ मई, २०१४ अंक से साभार ।)

जब स्वामी विवेकानन्द की वाणी बिजली के समान लगी

श्याम कुमार पाढ़ी, बिलासपुर

अपने छात्र-जीवन में मिन्टू बहुत ही मेधावी एवं कुशाग्र बुद्धि का था। प्रत्येक कक्षा में प्रथम श्रेणी में पास होना उसकी सहज सफलता थी। बातचीत, मेल-मिलाप व्यवहार में भी मिन्टू उत्तम कोटि का था। अपने कॉलेज की पढ़ाई के समय ही कुछ ऐसे मित्रों से उसकी मित्रता हो गई, जो लोग पढ़ाई के साथ-साथ अन्यान्य कई चीजों के शौकीन थे। उसकी मित्रता बढ़ती गई और वह भी उन सब चीजों में विशेष रुचि लेने लगा। अपने पिछले जीवन की पढ़ाई की उपलब्धियाँ तथा वर्तमान जीवन की दु:स्थिति पर घरवालों के तानों से मिन्टू लगभग ऊबकर विक्षिप्त-सा हो गया और घर के किसी कोने में दुबक कर सोया रहता। नींद तो लगभग उसके जीवन से ही उड़ गई थी। उसके हाव-भाव रंग-रूप से उसके पड़ोसी भी उसे पागल ही कहते। किसी से मिलना-जुलना उसे अच्छा नहीं लगता। अब उसे एक ही काम अच्छा लगता, वह था दूर निर्जन मैदान में सिगरेट पीना, वह भी एक पैकेट। सिगरेट का धुँआ ही उसे सुकून देता। कोई-कोई देखने वाले उसे ड्रग का आदि भी कह देते। उल्टी-सुल्टी सोच, अस्त-व्यस्त कार्य प्रणाली से घर के लोग झिड़कियाँ ही देते। एक दिन तो वह कहीं से देशी कट्टा पा गया। सोचा अपने आपको समाप्त कर देगा। किन्तु ऐसा कर नहीं पाया। जीवन को विवशता के कंधों पर ढोना अब यही उसकी नियति बन गई। उसे कैसा कपड़ा पहनना है, कब खाना है, क्या करना है, कुछ पता ही न रहता। घर के लोग भी उसे किसी मनोरोग चिकित्सक के पास ले जाने की सोचते। इसी बीच उसका एक सहपाठी मित्र था, जो 'विवेकानन्द पाठचक्र' में जाता था। उसने उसे भी एक बार पाठचक्र में जाने को कहा। टालते-टालते किसी तरह मिन्टू एक शाम पाठचक्र में पहुँच गया। उसने देखा कि वहाँ उसके जैसे २०-२५ युवक बैठे हैं। एक व्यक्ति स्वामी विवेकानन्द जी की वाणी पर व्याख्यान दे रहा है। स्वामी विवेकानन्द की वाणी उसे बिजली के झटके की तरह लगी एवं उसके मन को झकझोरने लगी।

वह अगले सप्ताह फिर से आया। उसे लगने लगा कि वहाँ सभी आत्मीय स्वजन हैं। उसे अच्छा लगने लगा। उसके अगले सप्ताह वह एक घण्टा पहले ही पहुँच गया और पाठचक्र के संचालक से मिला। उसने कहा, भैया मैं आपसे अपनी कुछ व्यक्तिगत बातें पूछना चाहता हूँ। परन्तु भैया ने बातों को विस्तृत जानकर दूसरे दिन आने को कहा। मिन्टू उस दिन की ताक में बैठा था। वह एक दिन शाम को आ गया। भैया से अपनी सारी आप-बीती कहने लगा। कहते-कहते हिचकी भरकर रोता, इसी तरह रात के ग्यारह बज गये। भैया ने उसे समझाया। जो भी हो, उस रात के बाद मिन्टू कुछ हल्का अनुभव कर रहा था। मिन्टू पाठचक्र में नियमित आता । अलग से भैया से मिलकर निर्देश भी लेता। अब वह भैया पर पूर्ण विश्वस्त हो गया। उसके जीवन को सुधारकर विकास-मार्ग में बढ़ाने के लिए भैया ने उससे वचन लिया कि वे जैसा कहेंगे वैसा करेगा। अब भैया ने उसे आगे पढ़ाई करने तथा संस्था के कार्यों से सघन रूप से जोड़कर व्यस्त कर दिया। आगे पढ़ाई करना मिन्टू सिर दर्द समझता रहा, किन्तु वचन दिया था, इसलिये पढ़ने लगा। वह बहुत कुछ सुधर गया। भैया के निर्देशानुसार उसने कॉलेज में बुरे मित्रों का संग छोड़ दिया। अब उसका घर, मित्र-मण्डली सब कुछ पाठचक्र के मित्र ही हो गये थे। उसे रात को नींद भी आने लगी। वह प्रसन्न रहने लगा। अब पढ़ाई के सुधार की बारी थी। वह पढ़ाई में सुधार करने लगा। किन्तु उसका परीक्षा-परिणाम ठीक नहीं होने से परिवार के लोग उससे खींझने लगे । भैया से इसकी शिकायत करने लगे। किन्तु भैया ने उसे संतोषजनक परिणाम कहा। यह सुन मिन्टू को अच्छा लगा कि भैया ने उसके प्रयत्न की प्रशंसा की है। अब वह पढ़ाई में और उत्साह से लग गया और अंतिम परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ। उससे घर-बाहर के सभी लोग आश्चर्यजनक रूप से खुश थे। क्योंकि अब वह एक इंजीनियर बन गया था। कुछ दिनों के बाद अपनी कुशाग्र बुद्धि के कारण वह एक बहुत बड़े संस्थान में इंजीनियर के रूप में सेवा दे रहा है और पाठचक्र के भाईयों के प्रति विशेष कृतज्ञ है। अब वह अपने माता-पिता और दूसरों की सेवा में व्यस्त रहता है। ○○○

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द सोसाइटी, जमशेदपुर में विविध कार्यक्रम आयोजित हुए –

वार्षिकोत्सव मनाया गया

१९ मार्च, २०१६ को ९.३० बजे श्रीरामकृष्ण उच्च विद्यालय, बिस्टुपुर और विवेकानन्द मध्य विद्यालय, बिस्टुपुर, जमशेदपुर का संयुक्त वार्षिकोत्सव रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द सोसाइटी, जमशेदपुर में मनाया गया, जिसमें आश्रम के सचिव स्वामी अमृतरूपानन्द जी महाराज ने छात्र-छात्राओं को सम्बोधित किया। मुख्य अतिथि रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के विवेक ज्योति के सम्पादक स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने विद्यार्थियों, शिक्षकों और अभिभावकों को सम्बोधित किया और बच्चों के चरित्र-निर्माण में अभिभावकों और शिक्षकों की भूमिका पर प्रकाश डाला । बच्चों ने विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किए, जिसमें गीत, नृत्य, योगासन-प्रस्तुति और यक्षप्रश्न, न्यायमन्त्री, नरेन के ठाकुर नाटक प्रस्तुत किए। मुख्य अतिथि के कर-कमलों से छात्र-छात्राओं को पुरस्कार प्रदान किया गया धन्यवाद ज्ञापन के बाद अन्त में 'रामकृष्णाशरणम्' और राष्ट्रगान से सभा सम्पन्न हुई।

१८, १९ मार्च को शाम ७ से १० बजे तक कोलकाता से आए हुए कलाकारों द्वारा बाउल गान हुआ।

सार्वजनिक सभा का आयोजन

श्रीरामकृष्ण देव की १८१वीं जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में २० मार्च, २०१६ को सन्ध्या ७ बजे रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द सोसाइटी, जमशेदपुर में सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। सभा का श्रीगणेश भजन से हुआ। आगत अतिथियों का स्वागत रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द सोसाइटी, जमशेदपुर के सचिव स्वामी अमृतरूपानन्द जी महाराज ने किया तथा अँग्रेजी में भगवान श्रीरामकृष्ण देव के योगदान का उल्लेख किया।

उसके बाद सभाध्यक्ष स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने हिन्दी में रामचरितमानस के परिप्रेक्ष्य में श्रीरामकृष्ण के साधनात्मक उपदेशों पर व्याख्यान दिया। तत्पश्चात् रामकृष्ण मिशन, गोलपार्क, कोलकाता के स्वामी चिद्रूपानन्द जी महाराज ने बंगाली में श्रीरामकृष्ण देव के अवतारत्व और जीवन पर विस्तृत प्रकाश डाला। तदनन्तर स्वामी अज्ञेयानन्द जी महाराज ने धन्यवाद ज्ञापन किया। स्वामी नित्यदीपानन्द जी महाराज के भजन 'तुमी कांगाल वेशे एसेशो हरि' और 'रामकृष्णशरणम्' से सभा सम्पन्न हुई।

रामकृष्ण मठ, घाटशिला में सार्वजनिक सभा हुई

१९ मार्च, २०१६ को ७ बजे से रामकृष्ण मठ, घाटशिला में श्रीरामकृष्ण देव की १८१वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। कार्यक्रम का शुभारम्भ ब्रह्मचारी संदीप के 'आज कोकिल कूजने मलय पवने' भजन से हुई। सभा में उपस्थित श्रोताओं और अतिथियों का स्वागत रामकृष्ण मठ, घाटशिला के अध्यक्ष स्वामी नटराजानन्द जी महाराज ने किया। रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने हिन्दी में श्रीरामकृष्ण के दार्शनिक और साधनात्मक उपदेशों पर प्रकाश डाला। सभा की अध्यक्षता रामकृष्ण मिशन, गोलपार्क के स्वामी चिद्रूपानन्द जी महाराज ने श्रीरामकृष्ण के ईश्वरत्व पर व्याख्यान दिया।

श्रीरामकृष्ण सेवा समिति, बिलासपुर में श्रीरामकृष्ण देव की जयन्ती के उपलक्ष्य में १९ मार्च, २०१६ को सार्वजनिक सभा का आयोजन हुआ, जिसे स्वामी सत्यरूपानन्द जी सम्बोधित किया।

मुजफ्फरपुर में फेको एमल्सीफिकेशन का उद्घाटन

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, मुजफ्फरपुर में फेको एमुल्सीफिकेशन का उद्घाटन १९ अप्रैल, २०१६ को मुजफ्फरपुर के उप जिला दण्डाधिकारी श्री सुनील कुमार जी ने किया । इस मशीन के दानदाता पावर लिंक्स ट्रासमीशन लिमिटेड के प्रतिनिधि श्री प्रभात कुमार और और श्रीमती दीक्षा सिंह भी उपस्थित थे। बाद में सबने आश्रम के नवनिर्माणाधीन इ.एन.टी. का अवलोकन किया। ○○○

रामकृष्ण मिशन आश्रम

(मुख्यालय : रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ, हावड़ा)

स्वामी विवेकानन्द मार्ग (बीड बायपास), औरंगाबाद - ४३१०१०

Phone : (0240) 237 6013, 237 7099, 645 2114

E-mail : rkmaurangabad@gmail.com

Web : www.rkmaurangabad.org

भगवान श्रीरामकृष्ण देव का सार्वजनीन मन्दिर (निर्माणाधीन)

उदारतापूर्वक दान देने हेतु विनम्र निवेदन

प्रिय सुहृद्जन,

सस्नेह शुभकामनाएँ

रामकृष्ण मिशन आश्रम, औरंगाबाद स्वामी विवेकानन्द मार्ग (बीड बायपास) पर स्थित है। यह आश्रम रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, कोलकाता की शाखा है। इस आश्रम के द्वारा चिकित्सा, शिक्षा, बाल-कल्याण केन्द्र के क्षेत्र में कई सेवा-कार्य संचालित किये जा रहे हैं। इसके साथ-ही-साथ भगवान श्रीरामकृष्ण देव एवं स्वामी विवेकानन्द के द्वारा प्रतिपादित शाश्वत धर्म के आध्यात्मिक संदेशों का प्रचार-प्रसार भी किया जा रहा है।

इस आश्रम के द्वारा श्रीरामकृष्ण देव के मंदिर का निर्माण-कार्य प्रारम्भ किया गया है। यह कार्य दिसम्बर २००९ में प्रारम्भ किया गया था तथा सन् २०१६ के अन्त तक पूर्ण होने की सम्भावना है। मंदिर का उद्घाटन १३ नवम्बर, २०१६ रविवार को प्रस्तावित है।

यह मन्दिर सामान्यत: सम्पूर्ण मराठावाड़ा क्षेत्र एवं विशेषरूप से औरंगाबाद शहर के लिए एक अनुपम एवं भव्य स्मारक होगा। इससे ऐतिहासिक शहर औरंगाबाद में एक सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक आयाम का समावेश होगा। यह स्थानीय लोगों के लिए पूजा, प्रार्थना, ध्यान आदि के लिये अत्यधिक प्रेरणा एवं आकर्षण का केन्द्र होगा। जो पर्यटक सम्पूर्ण विश्व की विरासत अजन्ता-एलोरा आदि को देखने आते हैं, और जो तीर्थयात्री घृष्णेश्वर ज्योतिर्लिंग, शिरडी, पैठण आदि दर्शन करने औरंगाबाद शहर में आते हैं, आशा की जाती है कि भविष्य में वे अपने यात्रा-कार्यक्रम में इस श्रीरामकृष्ण देव के मंदिर को भी सम्मिलित करेंगे। यह मन्दिर बिना किसी जाति, सम्प्रदाय, राष्ट्रीयता के भेदभाव से सबके लिये खुला रहेगा।

इस सम्पूर्ण योजना में लगभग १५ (पन्द्रह) करोड़ रुपये व्यय होंगे। अभी तक जनता के अनुदान से लगभग ११ करोड़ खर्च हो चुके हैं। मंदिर-निर्माण को पूर्ण करने हेतु शेष ४ करोड़ रुपये की आवश्यकता है।

हम आपसे विनम्रतापूर्वक निवेदन करते हैं कि आप इस श्रेष्ठ कार्य हेतु उदारतापूर्वक दान दें।

श्रीरामकृष्ण जो विश्व के सभी धर्मों के अद्वितीय समन्वयक थे तथा जिनका जीवन सम्पूर्ण मानवता की शान्ति एवं कल्याण के लिए समर्पित था, उनकी स्मृति में इस अद्वितीय मन्दिर के निर्माण में आपका सहयोग दीर्घ काल तक स्मरण किया जायेगा।

आपका आर्थिक और अन्य सहयोग हमारे लिये बहुमूल्य है।

भगवान की सेवा में आपका

(स्वामी विष्णुपादानन्द)

सचिव

मन्दिर का क्षेत्रफल : लम्बाई : १५६ फीट, चौड़ाई : ७६ फीट, ऊँचाई : १०० फीट
मन्दिर संरचना क्षेत्रफल - १८००० वर्गफीट, गर्भगृह - २४ फीट X २४ फीट
प्रार्थना व ध्यान के लिए मुख्य सभागार - ७० फीट X ४० फीट, बैठने की क्षमता - ४५०
सभागृह (तलघर) – ८० फीट X ५७ फीट, बैठने की क्षमता - ५००
सम्पूर्ण निर्माण-कार्य चुनार पत्थर और भीतरी संरचना अम्बाजी और मकराना मार्बल के द्वारा हुई है। मन्दिर की छत का निर्माण सागवान की लकड़ी से हो रहा है।
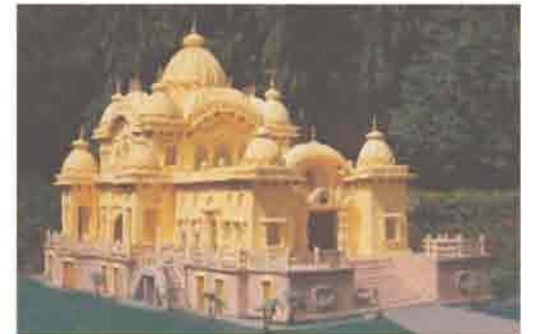
ऑनलाइन दान स्वीकार किए जाएँगे। आप अपना दान स्टेट बैंक ऑफ इन्डिया, एम. आय. टी. शाखा, औरंगाबाद के अकाउन्ट नम्बर 30697728250 (Branch Code : 10791, IFSC Code :- SBIN0010791) में सीधे अथवा ऑनलाइन जमा करा सकते हैं। कृपया ऑनलाइन दाता अपने दान की सूचना पूरे पते, मोबाइल नम्बर, ई-मेल और पॅन कॉर्ड के साथ हमें अवश्य दें।

- चेक/डी.डी. 'रामकृष्ण मिशन, औरंगाबाद के नाम बनवाएँ।

- दान राशि आयकर धारा ८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

प्रस्तावित मन्दिर का चित्र